६२६३

श्री जगदम्बायै नमो नम

योगच भक्ति सहित ज्ञान च श्रुति सम्मतम् ।
देव्या प्रोक्त स्वय चात्र सत्य सद्गुणदायकम् ॥

श्री भगवती जी के मुखारविन्द से नि सृत
भक्ति और ज्ञानस्वरूपा ब्रह्म-विद्या का मूल स्रोत

देवी गी ा एवं ् ष्ट साधना

अनुसन्धान कर्त्ता

आयुर्वेदाचार्य डा० अमरनाथ शास्त्री
विद्यालकार, वाचस्पति, एम० एस-सी०, डी० एस-सी० (आयुर्वेद)
प्रोफैसर एव हैड आफ दी फार्माकॉलोजी डिपार्टमेंट,
गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कॉलेज, पटियाला ।

प्रकाशक

अमर शक्ति प्रकाशन, पटियाला

©
पुनर्मुद्रणस्य सर्वेऽधिकाराः लेखकाधीनाः

मूल्य १० रु.

अक्तूबर १९७०

प्रकाशक
अमर शक्ति प्रकाशन
पटियाला

मुद्रक
जे० राय मगला एम० ए०
फुलकियाँ प्रैस, पटियाला

श्री गुरु नानक देव जी का आशीर्वाद

सनम्र निवेदन एवं कृतज्ञता

यह विश्व सदा शक्ति के द्वारा ही क्रियाशील रहा है और रहता आयेगा क्योंकि इस जगत् का मूल कारण शक्तितत्त्व ही है। शक्ति के विना मनुष्य आध्यात्मिक, आधिदैविक एव आधिभौतिक क्रियाओ को सम्पन्न करने मे समर्थ नही हो सकता। इसलिए जिस शक्ति ने मुझे इस पुस्तक के लिखने मे सक्रिय वनाया, मैं उस शक्ति की अपार कृपा समझता हू। यह शक्ति मानव के शारीरिक एव आध्यात्मिक वल को बढा कर उसे सशक्त वनाती हुई अपनी अनुभूतिओ का साक्षात्कार करवाती है,। उन साक्षात्कारमय तथ्यो के आधार पर इस पुस्तक की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रचना की गई है। क्योंकि वैज्ञानिक युग मे प्रत्येक वस्तु अपना वैज्ञानिक महत्त्व व्यक्त एव अव्यक्त रूप से अवश्य रखती है। इसलिए यहा अव्यक्त विषयो का अनुसन्धानपूर्ण दृष्टिकोण से वर्णन करने का जो प्रयास किया गया है, वह उस आद्याशक्ति महा-लक्ष्मी जी की कृपा से ही हुआ है। इस शक्ति द्वारा ही चौसठ प्रकार की विद्याओ का विकास मानव मे होता है, जिससे कि वह मोक्ष-पद को भी प्राप्त हो सकता है। जैसे कि लिखा है —

चतुष्पष्टि कलाविद्या दायक मोक्षसाधकम्।
ज्ञान देव्या सदा ज्ञेय प्राणिना हितमिच्छता॥

इस आधार से प्राणियो की हितकामना की भावना से युक्त मानव को अवश्य देवी सम्बन्धी ज्ञान का होना आवश्यक है।

इसलिए इस पुस्तक का अध्ययन साधक को अपनी मनन क्रिया द्वारा करते हुए अपनी शक्ति का विकास करना चाहिये, जिससे कि वह पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति करसकता है। इस पुस्तक की रचना मे केवल शिवा-शक्ति की ही प्रेरणा रही, व्यक्तिगत नही। ससार सगुण और निर्गुण भगवती के दो रूपो से परिपूर्ण होता है इसलिए इस आद्याशक्ति भगवती ने अपने निर्गुण रूप की प्रेरणा के साथ साथ अपने सगुण रूपात्मक शिवतत्त्व की

सहायता दिलाई है, जिससे कि प० शिवकुमार जी शास्त्री ने, मेरे चिकित्सा कार्यो मे व्यग्र रहने के कारण, इस पुस्तक के प्रूफ आदि सशोधन का भार अपने ऊपर लेकर इस पुस्तक को शीघ्र छपवाने मे सहायता की। एतदर्थ मैं उनका अत्यन्त धन्यवादी हू।

इसके अतिरिक्त —

गच्छत स्खलन क्वापि भवत्येव प्रमादत ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जना ॥

अर्थात् —सज्जन व्यक्ति त्रुटि का सुधार करते हैं और दुर्जन हसते हैं।

इस उक्ति के अनुसार विद्वान् समाज से मेरी सनम्र एव सानुरोध प्रार्थना है कि वह राजहस की भाँति क्षीरात्मक गुण ग्रहण करते हुए जलस्वरूपात्मक त्रुटि को पृथक् रूपेण क्षीरात्मक दृष्टिकोण से प्रकट करते हुए अपनी गुणज्ञता का परिचय देंगे, जिससे आपके अमूल्य सुधारात्मक विचारो का द्वितीय सस्करण मे लाभ उठाया जा सके।

विनीत —

डा० अमर नाथ शास्त्री

विषय सूची

1	भावना और साक्षात्कार	vii
2	सत्त्व गुण प्रधाना, अमर शक्ति स्वरूपा श्री महालक्ष्मी जी की भावनामयी प्रार्थना।	xi
3	देवी प्रार्थना के सक्षिप्तार्थ	xiii
4	Prayer	xvii
5	व्यास जी द्वारा जनमेजय जी को देवी की महत्ता का प्रतिपादन	1
6	श्री देवी जी का हिमालय को ज्ञानोपदेश	18
7	श्री देवी जी द्वारा अपने विराट रूप का वर्णन।	28
8	श्री देवी जी द्वारा हिमालय को विशिष्ट प्रकार का ज्ञानोपदेश	39
9	श्री देवी जी द्वारा नाना प्रकार के योगो का वर्णन।	50
10	श्री देवी जी द्वारा योग ज्ञान प्राप्ति का उपदेश।	63
11	भक्ति के भेद एव ज्ञान प्राप्ति की महिमा का वर्णन।	73
12	श्री देवी जी के तीर्थ, व्रत, उत्सव आदि पूजन की विधियो का वर्णन।	80
13	श्री देवी पूजन के नाना प्रकार के प्रसङ्गो का वर्णन	91
14	श्री देवी के पूजन का विधान एव उसका महत्त्व।	101
15	देवी इष्ट की महत्ता।	111
16	भक्ति के मूल सिद्धान्त।	124
17	पराभक्ति	131

18 भौतिक विज्ञान और शक्तिवाद। 135

19 शक्ति का मूल स्रोत नारी। 142

20 उपासना का मनोवैज्ञानिक आधार। 146

21 मन्त्रसत्ता और उपासना। 151

22 मन्त्रो का औषधियो के कार्य कारी गुणो (Active Principles) पर विशेष प्रभाव का मूल्याङ्कन। 163

23 चिकित्सा मे रत्न पद्धति (Ratna Theory) और मन्त्रवाद की एकता एव उनका मूल्याङ्कन। 165

24 आयुर्वेद एव ज्योतिष् के आधार पर रत्नो के धारण का क्रम 173

श्री गुरुदेव प० राम प्रसाद जी राज-वैद्य

आपकी अपार कृपा से परिपूर्ण, भक्ति और ज्ञान से ओत प्रोत, ब्रह्मविद्या का अद्वितीय ग्रन्थ "देवी गीता एव इष्ट साधना" आपके ही आशीर्वादात्मक वरद हस्तो में सादर एव सप्रेम समर्पित ।

आपका

डा० अमर नाथ शास्त्री

18	भौतिक विज्ञान और शक्तिवाद।	135
19	शक्ति का मूल स्रोत नारी।	142
20	उपासना का मनोवैज्ञानिक आधार।	146
21	म त्रसत्ता और उपासना।	151
22	मन्त्रो का ओषधियो के कार्य कारी गुणो (Active Principles) पर विशेष प्रभाव का मूल्याङ्कन।	163
23	चिकित्सा मे रत्न पद्धति (Ratna Theory) और मन्त्रवाद की एकता एव उनका मूल्याङ्कन।	165
24	आयुर्वेद एव ज्योतिष् के आधार पर रत्नो के धारण का क्रम	173

श्री गुरुदेव प० राम प्रसाद जी राज-वैद्य

आपकी अपार कृपा से परिपूर्ण, भक्ति और ज्ञान से ओत प्रोत, ब्रह्मविद्या का अद्वितीय ग्रन्थ "देवी गीता एव इष्ट साधना" आपके ही आशीर्वादात्मक वरद हस्तो में सादर एव सप्रेम समर्पित।

आपका

डा० अमर नाथ शास्त्री

भावना और साक्षात्कार

अभिरूप्यात्तु बिम्बस्य पूजायाश्च विशेषत ।
साधकस्य च विश्वासाद्देवता सन्निधिर्भवेत् ॥

यह सम्पूर्ण विश्व भावना एव श्रद्धा से ओत-प्रोत है । इसलिए जो व्यक्ति जिस वस्तु मे जैसी भावना एव श्रद्धा रखता है, वह वस्तु उसके लिए उसी रूप मे परिणत होती है क्योकि यह सम्पूर्ण जगत् उस आद्याशक्ति का ही तो प्रपच है।

यह सासारिक व्यक्ति शक्ति की कृपा से ही भावना और श्रद्धा से युक्त होकर आद्याशक्ति को समझने मे समर्थ हो सकता है अन्यथा नही। इस शक्ति के ज्ञान से नाना प्रकार की विद्याओ का विकास एव नाना प्रकार की जन-हित की भावना मानव मे उत्पन्न होती है जो उसके पुण्योदय एव पापक्षय का कारण बन कर उसे ब्रह्मज्ञानी बनाकर मोक्षपद को प्राप्त करा देती है। यह शक्ति तत्त्व ही है जो मानव को कर्मों मे भी सुखमय बनाता हुआ मोक्षपद प्राप्त कराता है । इसकी उपासना सगुण एव निर्गुण दो प्रकार की है। सगुण उपासना सद्य-फलदायक एव मन को शीघ्र ही नियन्त्रित कर देती है जिससे कि मानव उस अपने इष्ट देव के दर्शन भी करने मे समर्थ हो जाता है साकार उपासना मे अपने इष्ट की मूर्ति यदि शास्त्रीय आधार से हो और उसका पूजनक्रम विधिपूर्वक हो, साधक को अपने चिन्त्य विषय इष्ट देवता पर पूर्ण विश्वास हो, तब उसे उस इष्ट का साक्षात्कार हो जाता है। अत शास्त्रीय आधार से सगुण उपासना अधिक हितकर रहती है, जबकि निर्गुण उपासना मे बडी कठिनाइया हैं जोकि सासारिक व्यक्ति अपने कार्य-कलापो के साथ-साथ उसे करने मे असमर्थ रहता है। इसलिए प्रत्येक वस्तु की सन्निधि मानव को तब ही हो सकती है जब कि वह उस विषय मे पूर्ण अनुसन्धान करने मे व्यग्र रहे। इष्टदेव की कृपा एव उसके साक्षात्कार मे साधक की भावनात्मक श्रद्धा ही मूल कारण है।

भारतीय दर्शनशास्त्रो मे यह प्रतिपादित किया गया है कि यह ससार दु खबाहुल्यमय है। ससार मे रहते हुए सासारिक विषयो से कोई न कोई सम्बन्ध बना ही रहेगा, अत. किसी न किसी प्रकार का कष्ट मानवो के लिए अवश्यभावी है। तत्वचिन्तन का प्रधान लक्ष्य यही है कि दु खो का स्वरूप निरूपण करके उनके निराकरण का का सुगम उपाय निर्दिष्ट किया जाये।

आर्यसिद्धान्त के अनुरूप ही बौद्ध-सिद्धान्त भी इस बात पर सहमत है कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक रूप से तीन प्रकार के कष्ट मानव को सतत-व्यग्र करते रहते हैं।

जन्म-जरा प्रभृति दु खो से आप्लवित ससार मे वारम्बार आना-जाना ही इन दु खो का सबसे प्रमुख स्वरूप है। इन्ही दु खो का स्वरूप प्रतिपादन करने के लिए तथा उनका निवारण करने के लिए ही वैदिक शास्त्रो का निर्माण हुआ है।

जीव मात्र का स्वभाव है कि वह दु ख नाश एव सुख-प्राप्ति के लिए निज शक्ति के अनुसार प्रयत्न करता रहे। मानव तथा अन्य पशु पक्षी आदि प्राणिओ मे यही भेद है कि जहा अन्य प्राणी सासारिक उपायो से ही दु ख विघात के लिए प्रयत्नशील होते रहतेहैं, वहा मानव ज्ञानस्वरूप वेदो का भी आश्रय लेता है। वेदो मे यह उपदेश दिया गया है कि शक्ति तत्त्व-चिन्तनयुक्त मानव आहार निद्रा प्रभृति कर्मों मे न फसता हुआ, इस लोक मे ऐश्वर्य तथा परलोक मे सुखमय स्वर्ग को पाकर दु खो से पीछा छुडा लेता है। इसीलिए भारत के कर्मकाण्डप्रधान सभी धर्म इष्ट-पूर्ति रूप भावना पर ही अवलम्बित है।

वैदिक साहित्य मे मन्त्रद्रष्टा ऋषियो के समय मे साध्यतत्व रूप ब्रह्म की प्राप्ति पर ही विस्तार से प्रकाश डाला गया था, पर साधक के लिए गुरु-शिष्य परम्परा ही काफी है।

सामान्य साधक के लिए सूक्ष्म-अमूर्त का आश्रय लेना कठिनहै। वैदिक कर्मकाण्ड मे इन्द्र, वरुण, आदि उपास्यो को मूर्तभाव मे मानकर

उन्हे सुख-साध्य बना दिया है अत ज्ञानकाण्ड साधारण मानव के लिए कष्टसाध्य ही है। उपासना मार्ग का प्रारम्भ ऐसी ही स्थिति मे हुआ। उपास्य विशेष का सहारा लेकर साधना करने की प्रवृत्ति पुराणो, शैव, शाक्त, प्रभृति शास्त्रो मे प्रारम्भ हुई।

शक्ति की साधना मे मानव को इस जन्म तथा अगले जन्म मे अभ्युदय और मोक्षप्राप्ति सुगमतया प्राप्त हो जाती है।

शक्ति साधना का रहस्य तन्त्रशास्त्रो मे यथार्थरूप मे मिलता है। ये तन्त्रशास्त्र शिव और पार्वती के सम्वाद रूप मे निर्मित हुए है।

देवी भागवत ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय प्रभृति पुराणो मे शक्ति-वाद प्रमुख रूप से विकसित मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक मे भी शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इसमे बतलाया गया है कि आद्याशक्ति, महालक्ष्मी, महामाया का विधान पूर्वक अर्चन कर साधक इस जगत् मे होने वाले तीनो प्रकार के दु खो का ध्वस करता हुआ परमपद की प्राप्ति कर सकता है। इसमे शर्त केवल इतनी ही है कि वह पूर्ण रूप से भगवती मे विलीन हो जाये। महाशक्ति ससार की जननी कहलाती है, इसीलिए यह अपने साधक के अपराधो को क्षमा करके उसे पराभक्ति की लहर मे ले जाती हुई मुक्ति प्रदान करती है। ऐसे साधको के कार्य मानव मात्र का कल्याण करने वाले होते हैं। जगत् की कोई विध्वसमय लीला इन साधको पर कुछ भी प्रभाव डालने मे अशक्त होती है। जिस वश मे ऐसे साधको अर्थात् भक्तो का जन्म होना है, वह वश भी तर जाता है। इस आद्या-शक्ति, पराशक्ति, महामाया के प्रभाव से ये साधक भी दु ख दग्ध प्राणीमात्र के दु खो को विध्वश करने मे सतत प्रयत्नशील रहते हैं। दृश्यमान जगत् मे ऐसी कोई वस्तु नही, जो महामाया भगवती के भक्तो को अप्राप्य हो। लेखक का पुस्तक के निर्माण मे यही लक्ष्य हैं कि भौतिक दु ख विदग्ध मानव देवी की शरण लेकर अपने कष्टो का निवारण करते हुए इस लोक मे सुखोपभोग करके अपने भावी जीवन को सफल बनाये। अधर्म की ओर अग्रेसर मानव देवी के प्रभुत्व को अनुभव कर सत्पथ के अनुगामी हो। भारत का शक्तिवाद

सम्पूर्ण जगत् मे पूर्व समय से ही प्रसिद्ध है। लेखक अपने परिश्रम को तब ही सफल समझेगा यदि लोग इस पुस्तक मे प्रतिपादित मार्ग पर चल कर अपने भीतर शक्ति सचय करे। शक्ति सचय के वर्ष मे विशेष दो काल माने जाते हैं, एक चैत्र मासीय नवरात्र और दूसरा शारदीय नवरात्र । इसलिए इस सर्वोत्तम आश्विन नवरात्र मे अवश्य भगवती की उपासना द्वारा अपने आपको सफल बनाये। यथोक्तम् —

आश्विने शुक्ल पक्षे तु नवरात्रव्रत शुभम् ।
कुर्वन् भावनया युक्त सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

सत्त्व गुण प्रधाना, अमर शक्ति स्वरूपा
श्री महालक्ष्मी जी की भावनामयी प्रार्थना

मगले मगलार्हेच सर्व-मगल मगले ।
सता मगलदे देवि सर्वेषा मगलप्रदे ॥१॥

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते ।
शखचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥२॥

नमस्ते गरुडारूढे कोलासुर भयकरि ।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥३॥

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयकरि
सर्वदु खहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥४॥

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥५॥

आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥६॥

स्थूलसूक्ष्मे महारौद्रे महाशक्ति महोदरे ।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥७॥

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥८॥

रक्ताम्बर धरे देवि नानालकारभूषिते ।
जगस्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥९॥

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टि प्रभा धृति ।
एताभि पाहि तनुभिरष्टाभिर्मा सरस्वति ॥१०॥

दुर्गात्त्रायते भक्तमाधि-व्याधि-समाकुलम् ।
दुर्ज्ञेया सर्व देवाना ता दुर्गा प्रणमाम्यहम् ॥११॥

अमरेषु हि या शक्ति, अमरशक्ति प्रकीर्तिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१२॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धा रूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१३॥

या देवी सर्वभूतेष दयारूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१४॥

सर्वरूपमयी देवी सर्व देवीमय जगत् ।
अतोऽह विश्वरूपा त्वा नमामि परमेश्वरीम् ॥१५॥

कात्यायनि महामाये भवानि-भुवनेश्वरि ।
ससार सागरे मग्न मामुद्धर कृपामयि ॥१६॥

ब्रह्म विष्णु शिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके ।
मनोऽभिलषित देवि वर देहि नमोऽस्तु ते ॥१७॥

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥१८॥

देवी प्रार्थना के सन्क्षिप्तार्थ

हे देवि ! आप मगल (कल्याण) का वास्तविक रूप हो । विश्व-व्यापी समस्त मागलिक कार्यो मे आप ही सम्पूर्ण ससार की मगलमयी भावनाओ के द्वारा पूजा करने योग्य हो। आप ही जगत् को सर्व प्रकार के मागलिक कर्मो के प्रदान करने मे मगल स्वरूपा मातृ-शक्ति हो। जैसे ससार मे अपने छोटे बडे सब बच्चो का हित चाहती हुई माता अपने उन बच्चो के द्वारा स्वय भी हित का मूल साधन बनी रहती है, उसी प्रकार हे मातृ-शक्ति ! दुर्गे ! आप भी समस्त प्राणियो के प्रति अपनी मगलमयी दृष्टि से अपने भक्तो को सदा उनके हित निमित्त अपने पूजन आदि मागलिक कार्यो मे आसक्त ही रखती हो।

जब आपकी भक्तो पर अपार कृपा होती है, तब ही वे आपकी इस मगलमयी भक्ति की लहर का आनन्द ले सकते है, अन्यथा नही। जो व्यक्ति आपके द्वारा निश्चित —

तप सन्तोष आस्तिक्य दान देवस्य पूजनम् ।
सिद्धान्तश्रावणचैव ह्री मतिश्च जपो हुतम् ॥

अर्थात् (१) तप करना (२) सन्तोष रखना (३) आस्तिक भाव बनाए रखना। (४) दान करना (५) देवताओ का पूजन (६) शास्त्रो का अध्ययन एव मननपूर्वक सुनना (७) लज्जा शील रहना (८) सद् बुद्धि बनाए रखना (९) मन्त्रो का जप करना (१०) हवन करना-इन दस नियमो का पालन करने के कारण सज्जन कहलाने योग्य हैं, उनका कल्याण करने मे आप सदा समर्थ रहती हो। इससे अतिरिक्त अमर-शक्ति स्वरूपे ! मगल चण्डिके ! हे देवि ! जो व्यक्ति इस प्रकार के श्रेष्ठ नियमो का पालन करने मे अपना समय नही लगा सकते आप उन सब प्रकार के प्राणि वर्ग का भी कल्याण करती हो। अत हे मगले ! हे शक्ति ! आपको नमस्कार है ॥१॥

श्री पीठ पर स्थित देवताओ द्वारा पूजित होने वाली हे महामाये !

हे दुर्गे ! आपको नमस्कार है। शख, चक्र, गदा को हस्तो मे धारण करने वाली हे महालक्ष्मि ! आपको नमस्कार है ॥२॥

गरुड पर चढकर कोलासुर को भय देने वाली और सब प्रकार के पापो को हरने वाली हे भगवति ! हे महालक्ष्मी ! आपको नमस्कार है ॥३॥

हे देवि ! आप समस्त विश्व की भावनाओ को समझने मे समर्थ होकर उसे सब प्रकार के वरदान देने में समर्थ हो। आप समस्त दुष्ट जनो को अपने भयकर रूपो द्वारा भय देने वाली हो और आप ही उनके दुखो को दूर करने वाली महालक्ष्मी हो। आपको नमस्कार है ॥४॥

हे देवि ! आप सिद्धि और बुद्धि प्रदान करने एव भुक्ति (सासारिक विषयो के भोग) और मुक्ति (मोक्ष) देने में समर्थ शक्ति हो। आपका दिव्य रूप मन्त्रो द्वारा सदा पवित्र रहता है और साथ ही आप अपने भक्तो को मन्त्रो द्वारा पवित्र करने मे समर्थ रहती हो। आपका ही इस जगत् मे सदा देदीप्यमान प्रभाव विराजमान रहने के कारण आपको देवी शब्द से पुकारी जाने वाली शक्ति कहा जाता है। इसलिए उपर्युक्त गुणो से सम्पन्न हे महालक्ष्मि ! हे देवि ! आपको नमस्कार है ॥५॥

हे देवि ! आप आदि और अन्त से रहित आद्या शक्ति महेश्वरी हो। हे योगजे ! आप ही योग द्वारा प्रकट हुई भगवती महालक्ष्मि हो। आपको नमस्कार है ॥६॥

हे देवि ! आप स्थूल, सूक्ष्म एव महान् रौद्र-रूप धारण करने वाली सत्ता हो। हे महाशक्ति ! आप ही महोदरा शक्ति हो, अर्थात् आपके उदर मे सारा विश्व प्रलय काल मे समाता है, अत आपका नाम महीधरा युक्तियुक्त ही है। आप ही महापापो को नाश करने वाली भगवती महालक्ष्मी हो। आपको नमस्कार है ॥७॥

पद्म (कमल) के आसन पर विराजमान, पर ब्रह्म-स्वरूपिणि ! हे देवि परमेश्वरि ! हे जगदम्बे ! हे महालक्ष्मि ! आपको नमस्कार है ॥८॥

हे देवि ! आप रक्त अर्थात् लाल वस्त्रो से सुशोभित हो। आपके पहने हुए नाना प्रकार के अलकार आपकी शोभा को बढाते रहते हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त एव इस जगत् को उत्पन्न करने वाली महालक्ष्मी शक्ति हो। आपको नमस्कार है ॥६॥

हे सरस्वति ! लक्ष्मी मेघा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा, धृति इन आठ प्रकार की अपनी मूर्तियो से मेरी रक्षा करो॥ १०॥

जो दुर्गा शक्ति आधि अर्थात् मानसिक रोग व्याधि अर्थात् शारीरिक रोगो से युक्त अपने भक्त को कठिन मार्गो से बचाती है उस महाशक्ति दुर्गा जी को नमस्कार है। जिसकी अपार सत्ता को समझने मे सदा सारे देवता लोग भी असमर्थ हो रहते है ॥११॥

जो देवीय सत्ता अमरो अर्थात् देवताओ मे शक्ति रूप से विराजमान है, उसे अमरशक्ति कहते हैं। इसलिए हे अमरशक्ति स्वरूपे। दुर्गे ? आपको नमस्कार है ।

नमस्कार है। नमस्कार है। वार-वार नमस्कार है । १२॥

जो देवी सर्व प्राणियो मे श्रद्धा रूप से विराजमान है, उस शक्ति

को नमस्कार है। नमस्कार है। वार-बार नमस्कार है ॥१३॥

जो शक्ति सब प्राणियो मे दया रूप से विराजमान है, उसे नमस्कार है। नमस्कार है। नमस्कार है। बार बार नमस्कार हैं ॥१४॥

देवी शक्ति मे विश्व के सम्पूर्ण रूप विराजमान रहते हैं और यह विश्व भी सम्पूर्ण देवीमय ही है। इसलिए मै उस परमेश्वरी विश्वरूपा देवी शक्ति को नमस्कार करता हू ॥१५॥

हे कात्यायनि ! महामाये ! हे भुवनेश्वरी ! हे कृपामयि ! ससार सागर मे डूबते हुए मेरा आप उद्धार करे ॥१६॥

हे जगदम्बिके ! आपकी ही ब्रह्मा विष्णु शिव आराधना करते हैं। अर्थात् आप उन देवताओ की आराधनीया देवी हो। आप प्रसन्न हो

जाए । हे देवि ! मैं आपको नमस्कार करता हूं, आप मुझे मेरा मन वाञ्छित वरदान दें ॥१७॥

शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाली सम्पूर्ण जगत् जननि ! विश्वस्वामिनि ! चराचर जगत् का नियन्त्रण करने वाली महाशक्ति देवि ! आप प्रसादाभिमुखी होकर विश्व का कल्याण करें ॥१८॥

PRAYER

Devotional Prayers to the Highest Being,
Deity Supreme, Ruling the Universe
Sweetest, Noblest, Mightiest of All Gods,
Maha Laxami Ji, Satva Gun Pradhan !

Verse I

Thou Loving Mother of this universe !
Incarnation of Joys and Blissfulness !
All Cheers and comforts at Thy doors we sue,
Whatever we may think or talk or do
In all the undertakings of this world
Thy Love and Blessings all of us invoke,
Thou art the only Succour to Thy babes
The only Guide and Source of Happiness
Thy look, Thy Nod shall salve all our sores
Thou keepest us engaged in Good and Right
Thus shunning all the evils and the wrongs,
Thy Devotes we are in thoughts and deeds
O Holy Dame ! Thy benedictions grant
On all of us who bow before Thee now
This faith in Thee is stirred in us by Thee
To save us all from the unholy things,
And gain an access to Thy Bounteous Home
Singing these songs of Love and Faith in Thee
Ascetic life, Contented ways, True Faith
In all Thy Mighty Loving Mother's care,
All Charities profuse, Respect for gods,
Study of Holy Books and Scriptures all,
Thus Meditating over all we read,
And Preaching to the people all the thoughts,

Where Modesty and propriety are graced
Well-being of the world never ignored,
The Repetition of Thy Holy Name,
And Sacrifices to propitiate
Are Guiding Principles to us in Ten
Thou art the Saviour of holy men
Thou showest all Thy Power in their cause,
Thou art so kind even to those who slur
And do good to us all, the animates
We bow to Thee our heads O Holy Dame !

Verse II

In Thy abode in Shri Pith all the gods
Prostrate before thee in humility,
With Blooming Flower in Thy Loving Hand,
O Dame with Sankh and Chakra in (Thy) two hands,
With mighty Gada in Thy Striking Hand,
We humbly bow to Thee O Holy Dame !

Verse III

Thou mounted on the Garur, Terrifier,
To that the Kalasur, and Purifier,
Of all our sins, ommissions or commissions,
We bow to Thee our heads O Holy Dame !

Verse IV

Thou knowest all what passes in all minds
O Greatest Goddess, Thou hast all the power,
To reward good and punish all evils,
To give sweet boons to all Thy devotees
Thou strikest terror into all the hearts
Of all the people wicked and depraved,
Thou are the Annhilator of our woes,
O Maha Laxmi accept our bows

Verse V

O Goddess, we can get what we desire

For souls, for minds, for bodies in all climes
And Thou canst cleanse from all impurities
The souls of those who sing Thy Holy Hymns,
And we are liberated from all sins,
To gain admittance in Thy Holdy Sight,
In all Thy Halo shines, Thy Holy Light,
To purify the souls that are defiled,
Thy Glory is perceived in Universe,
We bow to Thee our heads o Holy Dame !

Verse VI

Thou hast no beginning, nor any end,
Thou art The Lady of the universe,
Thou manifestest on this surly world,
In Thy True light and Heavenly Delight,
Thou hast no cause, Thou are the Cause of all,
We bow to Thee our heads O Holy Dame

Verse VII

O Greatest Goddess Vibhu and Anu,
And Thou hast all the powers to assume,
To be the Biggest or the Smallest Thing
Most Terrifying Mother of this world,
Thou keepest safe this world in Big Deluge,
Protected well from all external harms,
Thy Holy Belly gives them Safe Refuge,
Mahodra, we hail Thee Holy Dame
Thou art the Destroyer of all our sins,
Thou art our Maha Laxmi O Dame,
We bow to Thee so humble and contrite
We bow to Thee our heads O Holy Dame

Verse VIII

So nicely seated on the Lotus Bloom,
Thou Greatest Goddess on this Earth and Sky,

Shines in Thy Mould, Thy Beauty and Design,
We bow to Thee O Holiest Dame Divine

Verse IX

Thou are so clad in reddest of the hues,
Thy countless ornaments do so adorn,
To make Thee only Beauty's Paragon.
Thou Only Beauty of this universe,
Thou art the Beauty of all prettiest things,
Thou art the Maker of this universe,
Thou art the giver, Life, and Death all,
We see Thy Beauty sweetly, scattered wide,
As well on Earth as on the Billows' Tide
In plains we see Thy Holy Alter decked,
O'r mountains high we see Thy Dancing step
The Ripples of Thy Ocean in us start,
The sister ripples in the humble heart,
Thy Verdure springs, Thy Flowery Gardens smile,
They pay their homage dancing all in file,
Flowers adorn Thy Brinks with patterns strange,
They frangrance Sweet, they strew and well arrange,
Thy home is here and every where O Dame
Thy Love and Blessings we seek in Thy Name,
We bow to Thee our heads O Holy Dame

Verse X

O we invoke Thee Goddess in Thy Forms,
In Eight Fold Manifestations of Thine
Saraswati Lakshmi, Medha, Dhara,
Pushti, Gauri, Tushti, Prabha, Dhriti Divine,
I hail Thee in Thy all the Holiest Forms,
Protect me Dame from all evil design

Verse XI

All-powerful, Thy devotees, we pray
Remove all mental strains and maladies,

All ailments of the bodies and the souls,
We how to Thee our heads O Holy Dame,

Verse XII

Thou art the Life of all the Immortals,
Thy Amarshakti makes them live for aye,
We supplicate Thee Ever-present Dame
We bow to Thee over and O'r again,
We bow to Thee our heads, O Holy Dame

Verse XIII

Thou art present in hearts of devotees,
Omnipresent and Omniscient Dame
Thou are our Faith, in Thee and in Thy Name,
We bow to Thee over and O'r again
We bow to Thee our heads O Holy Dame

Verse XIV

All merciful and Kind Mother Thou art,
No mortals can afford from Thee to part,
The beatings of our hearts repeat Thy Name,
We bow to Thee ovor and O'r again,
We bow to Thee our heads O Holy Dame

Verse XV

Thou art Eternal Home of Bliss, O Dame
Thou art the Source of music of this world,
They are Thy Forms, we see in lovely homes,
Sweet nymphic smiles, adorn the lovely domes,
To be with Thee or see Thy Happy Face,
Gives inspiration, love and life and grace,
We smell Thy Sweetest Fragrance in the meads,
Harmonious tones of music in our needs,
We pray to Thee our Holy Goddess Sweet,
We bow to Thee and all our rhymes repeat

Verse XVI

O Mighty Dame, accept these human bows,
As we adore Thee in our humble vows,
Our joys and hopes we only find in you,
You kindly save the faithful and the true,
With contrite hearts, and all the sacred vows,
The whole creation fore Thee humbly bows,
We seek Thy Blessings O Goddess Divine,
We know Thy gentle ways and loving care,
Thou wilt never despise this humble fare,
Admired and so adored by people all,
The residents of cottage or a hall,
Katyayani, Mahamaya Thou art,
Bhuvaneshwari, Kripa-Mayi Thou art,
O Mighty Dame accept these humble bows,
And let us keep all holiest of our vows,
We bow to Thee our heads O Holy Dame

Verse XVII

Thy Glory is perceived O'r hills and dales,
In thousands of varieties Thy Unity unveils,
O such a Harmony Thy Charming Hand,
Has brought about on every hill and land,
Even the poorest wits can understand,
Thy Nature above all in clay or sand,
Thou art the Mother of us all alone
Brahma and Vishnu do adore Thy Throne
And Shiva Ji too worships Thee in love,
As do the Devas worship you His Dove,
The whole creation dances at Thy Nod
At beck and call of Thine under Thy Rod,
O Grant to us the boons we do desire
So lowly bowed before Thy Holy Fire,
We bow to Thee our heads O Holy Dame

Verse XVIII

Exalted Mother of this universe,

Prostrated low, we humbly do rehearse,
Thy praises meet, you Mistress of this whole,
Controller of this world from pole to pole,
Thou Mighty Goddess rule over our hearts,
Grant us protection to our homes and hearths,
Remove all human sorrows and all woes,
As Thy devotee lies prosprate and bows,
Our heads and hearts and tongues repeat Thy Name,
We humbly bow to Thee O Holy Dame !

श्री पितृदेव प० राम गोपाल शास्त्री जी का
वरद हस्तमय आशीर्वाद

जनमेजय उवाच—
धराधराधीशमौलावाविरामोत्पर मह ॥
यदुक्त भवता पूर्व विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥१॥

को विरज्येत मतिमान्पिवञ्छक्तिकथामृतम् ॥
सुधा तु पिवता मृत्यु स नैतच्छृण्वतो भवेत् ॥२॥

राजा जनमेजय ने वेदव्याम जी से कहा— हे वेदव्यास जी! आपने अमरशक्ति स्वरूपा श्रीभगवती जी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए पूर्व-प्रसगो मे यह कहा था, कि हिमालय पर्वत के शिखर पर महान् तेजस्तत्व (सुदीप्ति) अश का अविर्भाव हुआ, इसलिए आप विस्तारपूर्वक इस प्रसग का वर्णन करने की कृपा कीजिये। इम विश्व मे ऐमा कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति नही जो शक्तिस्वरूपा श्री भगवती दुर्गा जी के कथा-रूपी अमृत को सुन कर तृप्त हो सके अर्थात् प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति श्री भगवती जी के कथा रूपी अमृत को पान करने मे लालायित ही रहता है, क्योकि अमृत पीने वालो की मृत्यु हो भी सकती है, परन्तु इस अमरशक्ति स्वरूपा देवी जी के कथा रूपी अमृत का पान करने वाला व्यक्ति अमर हो जाता है, अर्थात् इस अमरशक्ति के तत्वाश से युक्त होकर अमर होने के साथ-साथ इस शक्ति से तादात्म्य सम्बन्ध जोड कर अमरशक्ति स्वरूप हो जाता है ॥१-२॥

व्यास उवाच—
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभि ॥
भाग्यवानसि यद्देव्या निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते ॥३॥

शृणु राजन्पुरावृत्त सतीदेहेऽग्निभर्जिते ॥
भ्रात शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत् ॥४॥

प्रपचभानरहित समाधिगतमानस ॥
ध्यायन्देवीस्वरूप तु काल निन्ये स आत्मवान् ॥५॥

सौभाग्यरहित जात त्रैलोक्य सचराचरम् ॥
शक्तिहीन जगत्सर्व साब्धिद्वीप सपर्वतम् ॥६॥

आनन्द शुष्कता यात सर्वेषा हृदयान्तरे ॥
उदासीना सर्वलोकाश्चिताजर्जरचेतस ॥७॥

सदा दु खोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाऽभवन् ॥
ग्रहाणा देवताना च वैपरीत्येन वर्तनम् ॥८॥

अधिभूताधिदेवाना सत्यभावात्तदाभवन् ॥
अथास्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुर ॥९॥

ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायक ॥
शिवौरसस्तु य पुत्र स ते हता भविष्यति ॥१०॥

इति कल्पितमृत्यु स देवदेवैर्महासुर ॥
शिवौरससुताभावाज्जगर्ज च ननद च ॥११॥

तेन चोपद्रुता सर्वे स्वस्थानात्प्रच्युता सुरा ॥
शिवौरससुताभावाच्चितामापुर्दुरत्ययाम् ॥१२॥

नागना शकरस्यास्ति कथ तत्सुतसभव ॥
अस्माक भाग्यहीनाना कथ कार्यं भविष्यति ॥१३॥

इति चिंतातुरा सर्वे जग्मुर्वैकुण्ठमण्डले ॥
शशसुर्हरिमेकाते स चोपायजगाद ह ॥१४॥

कुतश्चितातुरा सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा ॥
जागर्ति भुवनेशानी मणिद्वीपाधिवासिनी ॥१५॥

अस्माकमनयादेव तदुपेक्षाऽस्तिनान्यथा ॥
शिक्षैवेय जगन्मात्रा कृताऽस्मच्छिक्षणाय च ॥१६॥

लालने ताडने मातुर्नाकारुण्य यथार्भके ॥
तद्वदेव जगन्मातुर्नियन्त्र्यागुणदोषयो ॥१७॥

अपराधो भवत्येव तनयस्य पदे पदे ॥
कोऽपर सहते लोके केवल मातर विना ॥१८॥

तस्माद्यूय पराम्बा ता शरण यात मा चिरम् ॥
निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा व कार्यं विधास्यति ॥१९॥

इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णु स्वजायया ॥
सयुतो निर्जगामाशु देवै सह सुराधिप ॥२०॥

श्री वेदव्यास जी ने राजा जनमेजय जी से कहा, हे राजन्! आप धन्य हो, कृतकृत्य हो, महात्मा लोगो ने आपको उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान की है, इसी कारण आपके हृदय मे श्री जगदम्बा जीके प्रति निष्कपट रूपा भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, जोकि आपके भाग्यशाली होने का परिचायक है।

हे राजन्, अब मैं आपको प्राचीनकालीन वृत्तान्त सुनाता हू, जोकि इस प्रकार है – एक समय का प्रसग है, कि जिस समय सती का देह अर्थात् (शिव की पत्नी का देह) योगाग्नि मे भस्म हो गया था, उस समय श्री-शिव देश-देशान्तरो मे भ्रमण करते हुए किसी एक स्थान पर ठहर गये। यहा तक शिव अपने व्यष्टि मन के चक्र मे थे। इसीलिए उन्हे पत्नी के वियोग से महान् कष्ट का अनुभव हो रहा था। उनका मन देश-देशान्तरो मे भ्रमण करने पर भी शान्त नही हो रहा था। वे उदासीन हो कर अपने दिन व्यतीत करने लगे, अर्थात् उन्हें धर्मोन्माद (Melancholia Religisa) रोग हो गया था।

ऐसी अवस्था मे भगवान् शिव अपने रोग को दूर करने के निमित्त मन को सब विषयो से निवृत्त कर उस जगत्-जननी भगवती का ध्यान करते हुए समय व्यतीत करने लगे, अर्थात् भगवान् शिव इस प्रकार अपने व्याकुल एव उदासीन मन को समाधिस्थ कर आत्म-चिन्तन करते हुए देवी स्वरूप सच्चिदानन्द मे मग्न हो गये।

उस समय श्री भगवान् शिव देवी जी के ध्यान मे मग्न होकर आत्म-चिन्तन की लहर मे डूबने लगे। उनका मन सासारिक प्रपचना से रहित अपने आपको अनुभव करने लगा। उस समय इनका यह मन व्यष्टि रूप मे नही था। उनका यह समष्टि मन अपनी शक्ति के अभाव से अर्थात् सती के योगाग्नि द्वारा भस्म होने पर कष्ट का अनुभव कर रहा था, क्योकि सारा विश्व इस समष्टि मन का ही प्रपच है। इसलिए वह समष्टि मन नाना प्रकार के सौभाग्य से अपने आपको वचित सा अनुभव करने लगा। विश्व मे शक्ति तत्व ही विशेष कार्यशील तत्व है, इसे ही ईश्वर, प्रकृति, ब्रह्म आदि शब्दो से पुकारा जाता है। इस अश के सगुण रूप मे क्षोभ होना आवश्यक है, क्योकि यह सृष्टि भी इसी सगुणशक्ति का प्रपच है। इस लिए भगवान् शिव के देवी तत्व के चितन मे मग्न होने पर त्रिलोकी मे जितने प्राणी थे, वे प्राय सौभाग्य से वचित हो गये। समुद्र, द्वीप एव पर्वतो से युक्त सारा विश्व शक्तिहीन हो गया।

सबके हृदय मे बहने वाला आनन्दमय रस का स्रोत बिल्कुल सूख गया। सृष्टि के सर्व लोक चिन्ता से व्याकुल एव क्षुब्ध होकर उदासीन रहने लगे, अर्थात् शरीर मे शक्ति (देवी) अ श का सचार रहने पर ही आनन्द का अनुभव करने मे मनुष्य समर्थ रहता है। इस शक्ति अश के सचार के बिना उसका मन सदा व्याकुल होकर उदासीन रहने लगता है और वह सत्, चित्, आनन्द की प्राप्ति मे भी दैवीय अ श के बिना सदा असमर्थ रहता है और साथ-साथ अपने आपकी पहचान करने मे भी सफल नही हो पाता, बल्कि उस मानव का मन स्वय रोग-ग्रस्त होकर अपने आधारभूत शरीर को भी रोग-ग्रस्त ही कर देता है।

इसी प्रकार यहा भगवान् शिव का समष्टि मन दु खित होकर सम्पूर्ण विश्व के दु ख मे कारण बना हुआ था। इसीलिए समस्त प्राणीवर्ग भगवान् शिव के दु खी होने पर दु ख के समुद्र मे डूब कर नाना प्रकार के रोगो से ग्रस्त हो गया है। और साथ साथ नवग्रह, (चन्द्र, सूर्य, मगल आदि) एव देवता वर्ग, (ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि) के समुचित कार्य-कलापो की गतिविधियो मे भी विपरीतता आ गयी, अर्थात् ग्रह एव देवता आदि भी अपने उचित कार्यो को करने मे इसलिए असमर्थ हो गये, कि भगवान् शिव का समष्टि मन उस समय व्याकुल था।

हे राजन् ! इस प्रकार भगवती सती के योगाग्नि से दग्ध होने पर देवता और सब मानव प्राय अपने कर्त्तव्य पथ से गिर कर उच्छृखल हो गये। ऐसी परस्थिति मे जो एक तारकासुर नामक महान् प्रसिद्ध राक्षस था, वह त्रिलोकी का अध्यक्ष बन गया, क्योकि ब्रह्मा जी ने उस राक्षस को यह वर दे दिया था, कि आपकी मृत्यु शिव के औरस पुत्र (अपनी पत्नी से उत्पन्न पुत्र) से होगी। इस प्रकार देवाधिदेव ब्रह्मा द्वारा व्यवस्थित मृत्यु का वरदान प्राप्त कर वह गर्जने और आनद की डींगें मारने लगा, कि शिवजी के औरस पुत्र की तो कल्पना ही नही हो सकती, उनकी पत्नी तो पहले ही योगाग्नि मे दग्ध हो चुकी है। इस से यह तारकासुर त्रिलोकी को दु खित करने लगा और इस तारकासुर राक्षस के उपद्रवो से व्याकुल होकर देवता अपने अपने स्थानो से भागने लगे, क्योकि उन्हे भी यह ज्ञान था, कि भगवान् शिव के कोई औरस पुत्र नही है। इस कारण वे अत्यन्त चिन्ता मे मग्न रहने लगे और सोचने लगे, कि शकर के तो स्त्री ही नही, स्त्री के विना पुत्र की उत्पत्ति कैसे सभव हो सकती है ? हम लोग भाग्यहीन है, ऐसी अवस्था मे हम भाग्यहीन देवताओ का कार्य कैसे सिद्ध हो सकेगा ? इस चिन्ता से व्याकुल होकर वे सब देवता वैकुण्ठ मे चले गये।

वहा जाकर उन्होने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त एकान्त स्थान मे श्री भगवान् विष्णु जी को सुनाया। भगवान् विष्णु जी ने उन के कष्ट के पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर सब देवताओ के हित-निमित्त उपाय बतलाया, हे देव वर्ग ! आप सब इतनी चिन्ता से व्याकुल क्यो हो रहे हैं ? भगवती शिवा सब कामनाओ को पूर्ण करने मे साक्षात् कल्प वृक्ष स्वरूपा हैं। वे ही मणिद्वीप मे निवास करती हैं और वे ही भगवती तथा भुवनेश्वरी नाम से पुकारी जाने वाली शक्ति सारे जगत् के हित-निमित्त जागती रहती हैं, इसलिए ऐसी सर्वशक्तिमयी सत्ता के सदा जागृत रहने पर आप लोगो को चिन्ता नही करनी चाहिये।

हम लोगो के दोप के कारण ही इस जगत्-माता ने हमारी उपेक्षा कर रखी है, अर्थात् हम लोग इस सत्ता से शक्ति प्राप्त करने मे ध्यान नही देते। इसमें अन्य कोई कारण नही है। उस जगत्-माता का यह कार्य हमे शिक्षा देने के लिए ही है, अर्थात् यह सब कार्य-कलाप (कष्ट

दे कर हमे दु खित करना) उस भगवती द्वारा ही सम्पन्न किया गया है, और इसमे वही शक्ति कारण-भूत है। उन्होने हमे शिक्षा देने के निमित्त ही हमारी इस प्रकार की दयनीय दशा की है।

जिस प्रकार माता बालक को चाहे प्यार करे या डाटे, वह सदा उसके प्रति प्रत्येक अवस्था मे अपनी दया ही रखती है, उसी प्रकार यहा पर भी इस जगज्जननी भगवती को समझना चाहिये। यह जगदम्बा-माता सबके गुण-दोषो को नियन्त्रण करने वाली सत्ता है, इसीलिए इसे प्रत्येक के गुण-दोषो के अनुसार ही कार्य करना पडता है।

पुत्र तो पद पद पर अपराध करता है परन्तु माता के बिना उसके अपराध को सहने वाला इस जगत् मे कोई दूसरा नही, अर्थात् माता ही अपने पुत्र के अपराधो को सहने मे समर्थ है। आप सब देवता लोग मन की एकाग्रता के साथ छल और कपट से रहित होकर उस भगवती जगत्-जननी की शरण मे चले। इस समय अधिक देर करना उचित नही, वही मातृशक्ति अवश्य आप लोगो के कार्य को सम्पन्न करने मे पूर्ण सफलता देगी।

हे राजन् ! इस प्रकार लक्ष्मी सहित भगवान् विष्णु जी ने देवताओ को उपदेश दिया और फिर भगवान् विष्णु भी सब देवताओ सहित वैकुण्ठ से चल पडे ॥३-२०॥

आजगाम महाशैल हिमवत नगाधिपम् ॥
अभवश्च सुरा सर्वे पुरश्चरणकर्मिण ॥२१॥

अम्बायज्ञविधानज्ञा अम्बायज्ञ च चक्रिरे ॥
तृतीयादिव्रतान्याशु चक्रु सर्वे सुरा नृप ॥२२॥

केचित्समाधिनिष्णाता केचिन्नामपरायणा ॥
केचित्सूक्तपरा केचिन्नामपारायणोत्सुका ॥२३॥

मन्त्रपारायणपरा केचित्कृच्छ्रादिकारिण ॥
अन्तर्यागपरा केचित्केचिन्न्यासपरायणा ॥२४॥

हृल्लेखया पराशक्ते पूजा चक्रुरतद्रिता ॥
इत्येव बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेजय ॥२५॥

भगवान् विष्णु जब उस हिमालय पर पहुचे, जोकि पर्वतो का राजा और अपने बहुत बडे विस्तार से समन्वित था, वहा पर देवताओ ने उस जगत्-जननी श्री भगवती माता जी की पुरश्चरण विधियो द्वारा आराधना करनी आरम्भ कर दी। हे राजन्! वहा पर समस्त देवताओ ने श्री भगवती जी के तृतीया आदि व्रतो का करना आरम्भ कर दिया। उनमे से कुछ देवता लोग जो अम्बा (दुर्गा) यज्ञ की विधि को जानने वाले थे, अम्बा यज्ञ करने लगे। कुछ देवता लोग समाधि लगा कर बैठ गये। कई एक श्री भगवती के नाम, कीर्तन और जप मे लग गये। कई देवीशुक्त का पाठ करने लगे। कई देवताओ ने मन्त्रो का जाप करना आरम्भ कर दिया। कई देवताओ ने कृच्छ्र व्रत रखने आरम्भ कर दिये। कई देवता लोग मन ही मन मे श्री भगवती जी का चिन्तन करते हुए मानसिक यज्ञ करने का अभ्यास करने लगे और कई न्यास विधियो द्वारा श्री भगवती जी की आराधना करने लगे। इसके अतिरिक्त कुछ देवता सावधान होकर मायाबीज (ह्री) मन्त्र का प्रयोग करके श्री भगवती परमेश्वरी का पूजन करने लगे। हे जनमेजय!, इस प्रकार जप आदि मे लग कर देवताओ ने वहा बहुत समय व्यतीत किया ॥२५॥

अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्या च भृगोर्दिने ॥
प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम् ॥२६॥

चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम् ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाश चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥२७॥

विद्युत्कोटिसमानाभमरुण तत्पर महः ॥
नैव चोर्ध्व न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत् ॥२८॥

आद्यतरहित तत्तु न हस्ताद्यगसयुतम् ॥
न च स्त्रीरूपमथवा न पु रूपमथोभयम् ॥२९॥

दीप्त्या पिधान नेत्राणा तेषामासीन्महीपते ।।
पुनश्च धैर्यमालम्ब्य यावत्त दद्दशु सुरा ।।३०।।

तावत्तदेव स्त्रीरूपेणाभादिव्य मनोहरम् ।।
अतीव रमणीयागी कुमारी नवयौवनाम् ।।३१।।

उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिंदिताभोजकुड्मलाम् ।।
रणत्किंकिणिकाजालसिंजन्मजीरमेखलाम् ।।३२।।

कनकागदकेयूरग्रैवेयकविभूषणाम् ।।
अनर्घ्यमणिसभिन्नगलबधविराजिताम् ।।३३।।

तनुकेतकसराजन्नीलभ्रमरकु तलाम् ।।
नितम्बबिम्बसुभगा रोमराजिविराजिताम् ।।३४।।

कर्पू रशकलोन्मिश्रताबूलपूरिताननाम् ।।
क्वणत्कनकताटकविटकवदनाबुजाम् ।।३५।।

अष्टमीचन्द्रबिंबाभललाटामायतभ्रुवाम् ।।
रक्तारविंदनयनामुन्नासा मधुराधराम् ।।३६।।

कुन्दकुड्मलदन्ताग्रा मुक्ताहारविराजिताम् ।।
रत्नसम्भिन्नमुकुटा चन्द्ररेखावतसिनीम् ।।३७।।

मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ।।
काश्मीरविंदुनिटिला नेत्रत्रयविलासिनीम् ।।३८।।

पाशाकुशवराभीति चतुर्बाहु त्रिलोचनाम् ।।
रक्तवस्त्रपरीधाना दाडिमीकुसुमप्रभाम् ।।३९।।

सर्वशृ गारवेपाढ्या सर्वदेवनमस्कृताम् ।।
सर्वाशापूरिका सर्वमातर सर्वमोहिनीम् ।।४०।।

प्रसादसुमुखीमम्वा मन्दस्मितमुखावुजाम् ॥
अव्याजकरुणामूर्ति ददृशु पुरत सुरा ॥४१॥

दृष्ट्वा ता करुणामूर्ति प्रणेमु सादर सुरा ॥
वक्तु नाशक्नुवन् किंचिद्वाष्पपूरितलोचना ॥४२॥

कथचिद्-धैर्यमालम्व्य भक्त्या चानतकधरा ॥
प्रेमाश्रूपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥४३॥

इसके पश्चात् स्वय श्रुति द्वारा जानने योग्य एक सर्वोत्कृष्ट ज्योति सबके समक्ष प्रकट हो गयी। उस दिन चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि और शुक्रवार था। चारो वेद मूर्तिमान् होकर चारो दिशाओ मे उस ज्योति की स्तुति करने लगे। वह ज्योति करोडो सूर्यो के समान प्रकाश वाली थी। इतनी शीतल थी कि मानो करोडो चन्द्रमा उदित हो गये हो। उस ज्योति की चमक करोडो विजलियो के समान थी। उसका वर्ण लाल था, वह ज्योति न बहुत ऊ ची थी, न तिरछी, वल्कि मध्यम श्रेणी की थी। आदि और अन्त से रहित उस ज्योति मे हाथ आदि कोई भी अग नही था। वह ज्योति न स्त्री रूप मे और न ही पुरुष एव नपु सक रूप मे थी अर्थात् उसमे किसी भी रूप का ज्ञान नही हो रहा था। वह ज्योति बहुत विचित्र थी। हे राजन्! इस तेज के प्रकट होते ही देवताओ की आँखें बन्द हो गयी। फिर धैर्य धारण करके जब उन्होने ऊपर को दृष्टि करके देखा, तब उन्हे एक दिव्य आभा से युक्त स्त्री का रूप दिखाई दिया, जोकि बहुत सुन्दर था। उस रूप मे प्रत्येक अग अत्यन्त सुन्दर रूप मे दिखाई देता था। वह रूप अभी कु वारी अवस्था का ही था। उस रूप मे यौवन खिल रहा था, अर्थात् देवताओ को इस अमरशक्ति स्वरूपा महालक्ष्मी के तेज पु ज से युक्त मनोहर स्त्री के रूप मे दर्शन हुये।

इस अमरशक्ति स्वरूपा भगवती का विशाल वक्ष-स्थल था। वजती हुई किंकिणी, करधनी और पायजेप (पाद भूषण) से उस शक्ति की विचित्र शोभा प्रतीत हो रही थी। दिव्य स्वर्ण के बाजूबन्द, कडे, कण्ठ हार आदि भूषण भगवती जी की शोभा बढा रहे थे। बहुमूल्य

मणियो का चमकीला हार उनके कण्ठ की शोभा मे वृद्धि कर रहा था। केवडा के नूतन पत्रो के समान उज्ज्वल कपोलो पर भ्रमर की तुलना करने वाले काले केश लहरा रहे थे। उनका कटि-प्रदेश बिम्ब फल के समान बडा ही सुन्दर था। उनके शरीर पर विराजमान रोम-वलियाँ भी उनकी शोभा बढा रही थी।

कर्पूर से युक्त पान के पत्ते से उनका मुख भरा हुआ था। उनके कमल जैसे मुख पर स्वर्णमय कुण्डलो की मधुर ध्वनि निकल रही थी। ललाट पर फैली हुई भौहे ऐसी प्रतीत होती थी, मानो अष्टमी का चन्द्रमा हो। लाल कमल के समान श्री भगवती जी के नेत्र थे और उन्नत, तीखी सी नासिका थी। होठो से अमृत टपक रहा था। कुन्द की खिली हुई कलियो के समान उनके सुन्दर दन्त थे। मोतियो की माला उनके गले की शोभा बढा रही थी। उनके मस्तिष्क पर चन्द्रमा की रेखा से अंकित, रत्न जटित मुकुट था।

मल्लिका और मालती की माला केश-वेणी मे गुथी रहने के कारण उसकी सुन्दरता की छवि चारो तरफ फैलकर उन्हे अधिक मनोहर बना रही थी। काश्मीर मे होने वाले केशर की बिन्दी से लिप्त उनका मस्तक सुशोभित हो रहा था और वे अपने तीनो नेत्रो की शोभा से अति सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उनकी पाश, अंकुश वर और अभय मुद्रा से युक्त चार भुजाये थी। उनके शरीर पर विराज-मान लाल रग का वस्त्र उन्हे सुशोभित कर रहा था और स्वय श्री भगवती जी अनार के पुष्प के समान रक्तवर्ण की आभा से युक्त हो रही थी। उनका शरीर सब प्रकार के श्रृगार द्रव्यो से सुशोभित था और सब देवता उस रूप को नमस्कार कर रहे थे। श्री भगवती माता जी का वह रूप सब प्रकार की आशाओ को पूर्ण करने वाला, सर्व प्राणी समूह को मोहित कर देने वाला एव सारे विश्व को जन्म देने वाला था। उनका यह मुख-कमल प्रसन्नता से खिला हुआ मन्द मन्द मुस्कान से युक्त होने के कारण अपनी विचित्र शोभा से युक्त था। देवता लोगो ने अपने सामने इस शुद्ध एव करुणा की मूर्ति स्वरूपा आद्याशक्ति, अमरशक्ति-स्वरूपा श्री भगवती, जगदम्बा जी के दर्शन किये।

इस रूप को देख कर सब देवता लोग आदरपूर्वक उस करुणामयी श्री भगवती जी को प्रणाम करने लगे । अत्यन्त प्रसन्नता से उत्पन्न आंसुओ के कारण उनके कण्ठ रुक गये और वे उस शक्ति के सामने कुछ बोलने मे समर्थ नही हो सके । फिर किसी न किसी प्रकार अपने मन मे स्थिरता उत्पन्न करके, अपने कन्धो को झुका कर नम्रता-पूर्वक इस अमरशक्ति स्वरूपा माता जी की स्तुति करने लगे । उस समय देवताओ के नेत्र, श्री भगवती जी के अधिक प्रेम और भक्ति की लहर से प्रेम के आंसुओ से परिपूर्ण थे ॥४३॥

देवा ऊचु –

नमोदेव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नम ॥
नम प्रकृत्यै भद्रायै नियता प्रणता स्म ताम् ॥४४॥

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलती वैरोचनी कर्मफलेपु जुष्टाम् ॥
दुर्गा देवी शरणमह प्रपद्ये सुतरसि तरसे नम ॥४५।

देवी वाचमजनयत देवास्ता विश्वरूपा पशवो वदन्ति ॥
सा नो मन्द्रेषमूर्ज दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥४६॥

कालरात्रि ब्रह्मस्तुता वैष्णवी स्कदमातरम् ॥
सरस्वतीमदिति दक्षदुहितर नमाम पावना शिवाम् ॥४७॥

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ॥
तन्नो देवी प्रचोदयात् ।४८॥

नमोविराट्स्वरूपिण्यै नम सूत्रात्ममूर्तये ॥
नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नम श्रीब्रह्ममूर्तये ॥४९॥

यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत् ॥
यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोस्ति नुमता भुवनेश्वरीम् ॥५०॥

नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम् ॥
अखडानन्दरूपा ता वेदतत्पार्थभूमिकाम् ॥५१॥

पञ्चकोशातिरिक्ता तामवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥
नुमस्तन्त्वदलक्ष्यार्था प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम् ॥५२॥

नम प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये ॥
नानामन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नम. ॥५३॥

इति स्तुता तदादेवैर्मणिद्वीपाधिवासिनी ॥
प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनि स्वना ॥५४॥

देवताओं ने स्तुति करते हुए कहा कि श्री देवी जी को नमस्कार है। महादेवी शिवा को नमस्कार है। प्रकृति एव भद्रा–स्वरूप शक्ति को नमस्कार है। पूर्ववर्णित दिव्यआभा एव शोभा से अलकृत उस श्री भगवती जगदम्बा जी को हम सब देवता नियमपूर्वक प्रणाम करते है।

हम उस दुर्गा भगवती जी की शरण मे हैं, जो अग्नि जैसे वर्णवाली, ज्ञान से जगमगाने वाली, दीप्तीमती, कर्मफल प्राप्ति के निमित्त सेवा करने योग्य है। ससार सागर से पार करने वाली हे दुर्गे, आपको नमस्कार है।

प्राण रूप एव देवरूप देवो ने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणी का उत्पन्न किया उसी को अनेक प्रकार से प्राणी बोलने है। वे कामधेनुतुल्य, आनन्द-दायिनी, अन्न तथा बल देने वाली, वाणीरूपा भगवती उत्तम स्तुति से प्रसन्न होकर हमारी रक्षा के लिए हमारे समीप रहे। काल का विनाश करने वाली, वेदो द्वारा स्तुति की जाने वाली, विष्णु शक्तिस्वरूपा, स्कन्दमाता रूप से शिव–शक्तिस्वरूपा, सरस्वती रूप से ब्रह्मशक्ति स्वरूपा, अदितिरूप एव दक्ष कन्या रूप से देव माता स्वरूपा, पापनाशिनी तथा कल्याणकारिणी जो श्री भगवती जी है, उन्हे हम प्रणाम करते हैं। हम सब लोग उपर्युक्त गुणो से विशिष्ट महालक्ष्मी जी को जानते है। वे ही सर्वशक्ति स्वरूपा हैं, उनका हम ध्यान करते हैं। हे महालक्ष्मी ! हे देवि ! हमे आप ज्ञान और ध्यान मे प्रवृत्त कराये, यही हमारी प्रार्थना है। विराट् रूप धारण करने वाली देवी को हम नमस्कार करते हैं। सूक्ष्म रूप से विराजमान देवी को हम नमस्कार करते हैं। अव्याकृत रूप

से शोभा पाने वाली और श्री ब्रह्म की मूर्ति धारण करने वाली शक्ति को हम नमस्कार करते हैं। इस शक्ति के ज्ञान के अभाव से ही रस्सी मे सर्प की भाति इस मिथ्या जगत् का भान होता है। जब इस शक्ति के विषय मे किंचिन्मात्र भी ज्ञान होना आरम्भ हो जाता है, तब मानव की भ्राति की बुद्धि नष्ट होने लगती है। इन गुणो से युक्त श्री भगवती भुवनेश्वरी के चरणो मे नत-मस्तक होकर हम नमस्कार करते हैं। हम भगवती भुवनेश्वरी को प्रणाम करते हैं जो (तत्) पद की लक्ष्यार्थ हैं, जिनका रूप एकमात्र चित् है, जो अखण्ड आनन्द की मूर्ति और वेद के तात्पर्य की भूमिका मानी जाती हैं। पचकोष के अतिरिक्त एव तीनो अवस्थाओ की साक्षिणी जो शक्ति है जिससे 'तत्' पद का बार बार लक्ष्य होता है तथा जो शक्ति प्रत्यगात्म-स्वरूपा है, उस भगवती भुवनेश्वरी को हम नमस्कार करते है। प्रणवस्वरूपा अर्थात् ओकारमयी देवी को नमस्कार है। ह्रीकार मूर्ति स्वरूपा देवी को नमस्कार है। नाना मन्त्रो की आत्मास्वरूप करुणामयी देवी को बार बार नमस्कार हैं। इस प्रकार देवताओ द्वारा स्तुति करने पर भगवती जगदम्बा ने आनन्द मे मग्न हो कोकिल जैसी मधुर वाणी मे इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥५४॥

श्री देव्युवाच—

वदतु विबुधा कार्यं यदर्थमिह सगता ॥
वरदाऽहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमाऽस्मि च ॥५५॥

तिष्ठन्त्या मयि का चिन्ता युस्माकं भक्तिशालिनाम् ॥
समुद्धरामि मद्भक्तान्दु खससारसागरात् ॥५६॥

इति प्रतिज्ञा मे सत्या जानीथ विबुधोत्तमा ॥
इति प्रेमाकुला वाणी श्रुत्वा सतुष्टमानसा ॥५७॥

देवा ऊचु -

निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुं ख स्वकीयकम् ॥
नाज्ञात किंचिदप्यत्र भवत्याऽस्ति जगत्त्रये ॥५८॥

सर्वज्ञया सर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि ॥
तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिता स्मो दिवानिशम् ॥५६॥

शिवागजाद्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे ॥
शिवागना तु नैवास्ति जानासि त्व महेश्वरि ॥६०॥

सर्वज्ञपुरत किं वा वक्तव्य पामरैर्जनै ॥
एतदुद्देशत. प्रोक्तमपर तर्कयाम्बिके ॥६१॥

सर्वदा चरणाभोजे भक्ति स्यात्तव निश्चला ॥
प्रार्थनीयमिद मुख्यमपर देहहेतवे ॥६२॥

इति तेषा वच श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी ॥
मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥६३॥

शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा व कार्य विधास्यति ॥
भक्तिर्मच्चरणाभोजे भूयाद्युष्माकमादरात् ॥६४॥

हिमालयो हि मनसा मामुपास्तेऽतिभक्तित ॥
ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकर मतम् ॥६५॥

श्री देवी जी ने कहा—हे देवता लोगो ! आप यहा किस कारण से उपस्थित हुए हो, यह बतलाने का कष्ट कीजिये, क्योकि मैं अपने भक्तो को इस दु खमय ससार सागर से पार कर देती हू । हे बुद्धिमान् देवताओ ! आपको मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य समझनी चाहिये । स्नेह से युक्त होकर भगवती जगदम्बा इस प्रकार कह गयी । उनकी वाणी सुन कर देवताओ का मन प्रसन्न हो गया । हे राजन् ! अब निर्भय होकर वे देवता लोग अपना दु ख भगवती को सुनाने लगे । देवता बोले—परमेश्वरि ! इस त्रिलोकी मे कोई भी ऐसी वस्तु नही है, जो आपके ज्ञान से परे हो । क्योकि आप सर्वज्ञा एव सर्वसाक्षीस्वरूपिणी शक्ति हो । हे शिवे ! तारक नाम वाला एक महान् राक्षस हमे दिन रात कष्ट पहुचा रहा है । शकर के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु ब्रह्मा जी ने अपने वरप्रदान द्वारा निश्चित कर दी है ! हे महेश्वरि ! आप जानती ही

हैं कि इस समय शिव भगवान् स्त्री से रहित होकर अपना विधुर जीवन (स्त्री के मरने पर दयनीय जीवन) व्यतीत कर रहे हैं। हम अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति आप जैसी सर्वज्ञान-सम्पन्ना माता के समक्ष क्या कह सकते हैं, अर्थात् हमारे कहने का कोई महत्व ही नही क्योकि आप स्वय सर्वज्ञा होने के नाते सब कुछ समझती ही हो।

हे अम्बिके ! हे देवि ! आपके चरण कमलो मे हमारी सदा स्थिर रहने वाली भक्ति हो। देह की रक्षा के निमित्त यही हमारी दूसरी प्रार्थना है। हे राजन् ! देवताओ की बात सुन कर श्री भगवती परमेश्वरी इस प्रकार बोली— हे देवताओ ? मेरी शक्ति जो गौरी नाम से विख्यात है, वह हिमालय के घर प्रकट होगी। उस समय आपने ऐसा प्रयत्न करना, जिससे उसका विवाह भगवान् शिव के साथ हो जाये। वही मेरी शक्ति आप लोगो का कार्य सिद्ध कर देगी, यदि आप लोगो की भक्ति मेरे चरणकमलो मे आदरपूर्वक बनी रही। हिमालय का भी कर्तव्य है कि वह भी भक्ति युक्त मन से मेरी उपासना करता। अत उसके घर मेरी इच्छा के अनुसार मेरी शक्ति गौरी का जन्म अवश्य होगा, जो मुझे भी अत्यन्त प्रिय है ॥६५॥
व्यास उवाच—

हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वाऽत्यनुग्रहकर वच ॥
बाष्पै सरुद्धकठाक्षो महाराज्ञी वचोऽब्रवीत् ॥६६॥

महत्तर त कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि ॥
नोचेत्क्वाह जड स्थाणु क्व त्व सच्चित्स्वरूपिणी ॥६७॥

असभाव्य जन्मशतैस्त्वत्पितृत्व ममानघे ॥
अश्वमेधादिपुण्यैर्वा पुण्यैर्वा तत्समाधिजै ॥६८॥

अद्य प्रपचे कीर्ति स्याज्जगन्माता सुताऽभवत् ॥
अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥६९॥

यस्यास्तु जठरे सति ब्रह्माण्डाना च कोटय ॥
सैव यस्य सुता जाता को वा स्यात्तत्समो भुवि ॥७०॥

न जानेऽस्मत्पितॄणा कि स्थान स्यान्निर्मित परम् ।।
एतादृशाना वासाय येषा वशेऽस्ति मादृश. ।।७१।।

इद यथा च दत्त मे कृपया प्रेमपूर्णया ।।
सर्ववेदान्तसिद्ध च स्वरूप ब्रूहि मे तथा ।।७२।।

योग च भक्तिसहित ज्ञान च श्रुतिसम्मतम् ।।
वदस्व परमेशानि त्वमेवाहृ यतो भवे ।।७३।।

व्यास जी बोले— हे राजन् ! हिमालय भी परमेश्वरी के इस अत्यन्त कृपा पूर्ण वचनो को सुन रहे थे । उस समय उनका कण्ठ और आँखे प्रेम के अश्रुओ से सरुद्ध एव व्याप्त हो गई थी । ऐसी अवस्था मे उन्होने श्री भगवती देवी जी से कहा, हे जगदम्बे ? मुझ जड पर आपकी जो कृपा हुई है, इससे यह सिद्ध है कि आप मुझे महान् व्यक्ति बनाने के प्रयत्न मे लगी हुई हो, अर्थात् आप मेरा कल्याण चाहती हुई मुझे सब प्रकार की सम्पत्तियो से युक्त बनाकर देवी-सम्पत् से युक्त करना चाहती हो । यदि ऐसा न होता तो इस एक जड पर्वत पर आपकी दया हो ही नही सकती थी । हे भगवति, आप ही सत् एव चिन्मयी सत्ता हो । मैं एक जड पर्वत हू ।

हे अनघे ! सैकडो जन्मो के अश्वमेघ आदि यज्ञो एव सैकडो वर्षों की समाधिओ के पुण्य से भी मैं आपका पिता नही हो सकता था । यह जो आपकी अहैतुकी (बिना ही कारण) कृपा है, इससे जगत् मे मेरा यश फैल जायेगा । जनता कहेगी कि जगदम्बा हिमालय की पुत्री है । इसलिए हिमालय बडा ही धन्य एव भाग्यशाली है । जिनके उदर मे करोडो ब्रह्माण्ड समाते हैं, ऐसी भगवती जगदम्बा शक्ति जिसके घर कन्या रूप से प्रकट हुई हो उसकी तुलना जगत् मे कौन कर सकता है, अर्थात् जिसके घर भगवती जगदम्बा जी के किसी अश का भी जन्म होता है, उसकी तुलना इस जगत् मे किसी के साथ नही हो सकती । मेरे पितर भी पुण्यात्मा हो गये हैं जिनके वश मे मेरे जैसे पुत्र ने जन्म लिया है । मैं नही जान सकता, पितृ लोक मे उनके रहने के लिए कौन सा श्रेष्ठ स्थान बना है । जिस प्रकार हे भगवति ! आपने स्नेहपूर्ण

कृपा के वशीभूत होकर मुझे अपने अंगभूत (गौरी) के पिता होने का सुअवसर प्रदान किया है, वैसे ही सम्पूर्ण वेदान्त के सिद्धान्त भूत अपने स्वरूप का भी आप कृपापूर्ण दृष्टि से वर्णन करें।

हे परमेश्वरि ! आपकी ही कृपा से मैं भक्तियुक्त योग और श्रुति सम्मत ज्ञान की प्राप्ति कर सकता हूं । इसलिए हे जगज्जननि ! आप इस विषय पर प्रकाश डालकर कृतार्थ कीजिये ॥७३॥

व्यास उवाच —

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजा ॥
वक्तुमारभताम्बा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम् ॥७४॥

व्यास जी बोले —हे राजन् ? हिमालय के मुख से इस प्रकार के वचनों को सुन कर भगवती जगदम्बा का मुख कमल प्रसन्न हो गया और फिर श्री भगवती जगदम्बा श्रुतियों में छिपे हुए उस ज्ञान के रहस्य का इस प्रकार प्रतिपादन करने लगी ॥७४॥

इति श्रीदेवी–भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
देवीगीताशास्त्रे प्रथमोऽध्याय

द्वितीय अध्याय

श्री देव्युवाच—

शृण्वन्तु निर्जरा सर्वे व्याहरत्या वचो मम ॥
यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्व प्रपद्यते ॥१॥

अहमेवास पूर्व तु नान्यत्किंचिन्नगाधिप ॥
तदात्मरूप चित्सवित्परब्रह्मैकनामकम् ॥२॥

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् ।
तस्य काचित्स्वत सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता ॥३॥

न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधत ॥
एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा ॥४॥

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णाशोरिव दीधिति ॥
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेय ममेय सहजा ध्रुवा ॥५॥

तस्या कर्माणि जीवाना जीवा कालाश्च सचरे ॥
अभेदेन विलीना. स्यु सुषुप्तौ व्यवहारवत् ॥६॥

स्वशक्तेश्च समायोगादह बीजात्मता गता ॥
स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्व च समागतम् ॥७॥

चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्व च कथ्यते ॥
प्रपचपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते ॥८॥

केचित्ता तप इत्याहुस्तम केचिज्जड परे ॥
ज्ञान माया प्रधान च प्रकृति शक्तिमप्यजाम् ॥९॥

विमर्श्यं इति ता प्राहु शैवशास्त्रविशारदा ॥
अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिंतका ॥१०॥

(इस अध्याय मे श्री भगवती देवी जी हिमालय को ज्ञानोपदेश दे रहा हैं) श्री भगवती देवी जी ने कहा— हे देवताओ ? मेरी वाणी को सुनो, जो मैं कह रही हू। इसके श्रवण मात्र से मानव मेरे रूप को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् देवता लोगो ! अगर आप अपनी दैवीय सत्ता की सुरक्षा करना चाहते हो तो मेरे वचनो के अनुसार अपना कार्यक्रम रक्खें। तब आप मेरे रूप को प्राप्त होकर मेरी दैवीय सम्पत् से युक्त हो सकते हो।

हे पर्वतराज हिमालय ! मैं आपको सर्वप्रथम अपने विषय मे बतलाती हू कि मैं कौन हू। इस ससार मे सबसे पहले मैं ही थी । दूसरी किसी वस्तु की सत्ता ससार मे नही थी। उस समय मेरा रूप सत्, चित् एव आनन्दमय परब्रह्म था। मेरा वह रूप अप्रतर्क्य, अर्थात् तर्क शक्ति से रहित, अनिर्देश्य (जिसका निर्देश न किया जा सके), अनौपम्य- (जिसके साथ किसी की उपमा न की जा सके और अनामय, अर्थात् रोगो से रहित था । उस रूप से कोई एक शक्ति स्वय प्रकट हो गयी, जिसका नाम माया पड गया। वह माया न सती थी, न असती। इस सती और असती भेद से शून्य वह कोई एक विलक्षण वस्तु थी । अग्नि मे जो प्रकाश एव चन्द्रमा मे जो चन्द्रिका विराजमान है, वह उस मेरी शक्ति का ही अश है । उस माया-शक्ति को निश्चित रूप से मेरी सहचरी, अर्थात् साथ रहने वाली शक्ति समझिये। जीवो का जीना और मरना इसी माया शक्ति के कर्म हैं। प्रलय के समय इस माया शक्ति में और मुझमे कुछ भेद नही रहा । सब के सब इस माया शक्ति मे समा गये। अपनी इस शक्ति के सहयोग से मैं बीज रूप मे परिणत हुई । यही शक्ति उस समय मेरा आधार और आवरण थी, इसलिए इस माया शक्ति का कुछ दोष मेरे मे भी समा गया । मेरा बीजात्मक रूप चैतन्य ब्रह्म के सयोग से निमित्त, और प्रपच के परिणाम से 'समवायि कारण' कहलाने लगा । कुछ लोग इसी शक्ति को तप, कुछ लोग तम एव जड शब्द से भी पुकारते हैं। शिव शास्त्र के तत्त्वदर्शी विद्वान् इस शक्ति के विषय मे परस्पर परामर्श करने के पश्चात् इसे ज्ञान, माया,

प्रकृति, शक्ति एव अजा भी कहते है। इसके अतिरिक्त वेदो के तत्त्वो को समझने वाले अन्य व्यक्ति इसे अविद्या के नाम से पुकारते हैं ॥१०॥

एव नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिपु ॥
तस्या जडत्व दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती ॥११॥

चैतन्यस्य न दृश्यत्व दृश्यत्वे जडमेव तत् ॥
स्वप्रकाश च चैतन्य न परेण प्रकाशितम् ॥१२॥

अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम् ॥
कर्मकर्त्री विरोध स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ॥१३॥

प्रकाशमानमन्येषा भासक विद्धि पर्वत ॥
अतएव च नित्यत्व सिद्धसवित्तनोर्मम ॥१४॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारत ॥
सविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित् ॥१५॥

इस प्रकार वेदो मे इसका विविध नामो से वर्णन मिलता है। इस माया के दृश्यमान गुण के कारण इसका नाम जड और ज्ञाननाशक गुण होने से इसका असती नाम भी युक्तियुक्त ही है। चैतन्य दृश्य नही होता। उसमे यदि दृश्यता आ जाये तो उसे जड कहते हैं, क्योकि चैतन्य स्वय प्रकाश रूप है। वह किसी दूसरी वस्तु से प्रकाशित नही होता। यदि ऐसा कहा जाये कि प्रकाश ही प्रकाश को प्रकाशित करता है, तो ऐसा कहने से अनवस्था दोष आ जायेगा। कर्म और कर्त्ता यह परस्पर विरोधी धर्म एक वस्तु मे कैसे समा सकते हैं ? अर्थात् नही समा सकते। इसलिए मेरा रूप दीपक के समान स्वय-प्रकाश है। हे पर्वतराज ! प्रकाशक दूसरो को प्रकट करने मे उपयोगी होता है। यह समझते हुए आप मेरे सवित् शरीर की नित्यता स्पष्ट समझिये। यदि मेरे रूप को दृश्य माने तो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था मे व्यभिचार दोष आ जायेगा, क्योकि सवित् और व्यभिचार का किसी एक वस्तु मे ही अनुभव होना बिल्कुल असभव है ॥१५॥

यदि तस्याप्यनुभवस्तर्ह्यं य येन साक्षिणा ॥
अनुभूत स एवात्र शिष्ट सविद्वपु पुग ॥१६॥

अतएव च नित्यत्व प्रोक्त सच्छास्त्रकोविदै ॥
आनन्दरूपता चास्या परप्रेमास्पदत्वत ॥१७॥

मा न भूव हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम् ॥
सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसगत्व स्फुट मम ॥१८॥

अपरिच्छिन्नताऽप्येवमत एव मता मम ॥
तच्च ज्ञान नात्मधर्मो धर्मत्वे जडतात्मन ॥१९॥

ज्ञानस्य जडशेषत्व न दृष्ट न च सभवि ॥
चिद्धर्मत्व तथा नास्ति चितश्चिन्न हि विद्यते ॥२०॥

तस्मादात्मज्ञानरूपा सुखरूपश्च सर्वदा ॥
सत्य पूर्णोऽप्यसगश्च द्वैतजालविवर्जित ॥२१॥

यदि सवित् को अनुभव सिद्ध माना जाये, तब जिस साक्षी द्वारा यह अनुभव मे लाया जाना है, वह साक्षी ही विशिष्ट प्रकार का माना जायेगा और वही सवित् अर्थात् ज्ञानमय शरीर का रूप होगा, इसीलिए श्रेष्ठ शास्त्रो को जानने वाले विद्वान् उसे नित्य कहते हैं । दूसरे व्यक्ति उसमे प्रेम रखते है अर्थात् दूसरो का प्रेम पात्र होने से उसी ज्ञानमय शरीर मे आनन्दरूपता भी आ जाती है । पहले मेरा अभाव था, ऐसी बात नही । मैं उस समय भी थी । प्रेमीजन मुझे उस समय भी अपनी अन्तरात्मा से याद करते थे । अन्य सभी वस्तुएँ मिथ्या हैं । मैं उनका साथ नही देती, यह बात भी स्पष्ट है । इसलिए मेरे रूप मे अपरिच्छिन्नता ही रहती है । ज्ञान कभी आत्मा का धर्म नही होता । नही तो उसमे जडता आ सकती है । ज्ञान के किसी एक अश मे जडता होती है, यह न कभी देखा है और भविष्य मे न कभी देखा जा सकता है । इसी प्रकार चित् धर्म से दूसरा चित् क्या होगा ? अर्थात् कुछ नही । इससे सिद्ध होता है,

कि आत्मा ज्ञानरूप, सुखरूप, सत्य, पूर्ण, असग एव द्वैतरहित ही सदा रहती है ॥२१॥

स पुन कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया ॥
पूर्वानुभूतसस्कारात् कालकर्मविपाकत ॥२२॥

अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते ॥
अबुद्धिपूर्व सर्गोऽय कथितस्ते नगाधिप ॥२३॥

वही आत्मा फिर काम एव कर्म से सम्बन्धित अपनी माया के साथ होकर पूर्व अनुभूत सस्कार काल कर्म के विपाक, एव तत्त्व ज्ञान के अभाव से सृष्टि करने के विचारो से शरीर धारण कर लेता है। हे पर्वतराज! यह मैंने अबुद्धिपूर्व सृष्टि क्रम आपको बतला दिया है ॥२३॥

एतद्धि यन्मया प्रोक्त मम रूपमलौकिकम् ॥
अव्याकृत तदव्यक्त मायाशबलमित्यपि ॥२४॥

प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम् ॥
तत्त्वानामादिभूत च सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥२५॥

सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ॥
ह्रींकारमन्त्रवाच्य तदादितत्त्व तदुच्यते ॥२६॥

तस्मादाकाश उत्पन्न शब्दतन्मात्ररूपक ॥
भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मक पुन ॥२७॥

जल रसात्मक पश्चात्ततो गधात्मिका धरा ॥
शब्दैकगुण आकाशो वायु स्पर्शरवान्वित ॥२८॥

शब्दस्पर्शरूपगुण तेज इत्युच्यते बुधै ॥
शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणा स्मृता ॥२९॥

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धै पचगुणा धरा ॥
तेभ्योऽभवन्महत्सूत्र यल्लिग परिचक्षते ॥३०॥

सर्वात्मक तत्सप्रोक्त सूक्ष्मदेहोऽयमात्मन ॥
अव्यक्त कारणो देह स चोक्त पूर्वमेव हि ॥३१॥

यस्मिजगद्वीजरूप स्थित लिंगोद्भवो यत ॥
तत स्थूलानि भूतानि पचीकरणमार्गत ॥३२॥

पचसख्यानि जायते तत्प्रकारस्तथोच्यते ॥
पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्यक विभजेद्द्विधा ॥३३॥

एकैक भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद् गिरे ।
स्वस्वेतरद्वितीयाशे योजनात्पच पच ते ॥३४॥

तत्कार्यं च विराड्देह स्थूलदेहोऽयमात्मन ॥
पचभूतस्थ-सत्त्वाशै श्रोत्रादीनासमुद्भव ॥३५॥

ज्ञानेन्द्रियाणा राजेन्द्र प्रत्येक मिलितैस्तु तैं ॥
अन्त करणमेक स्याद्वृत्तिर्भेदाच्चतुर्विधम् ॥३६॥

यदा सु सकल्पविकल्पकृत्य तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् ॥
स्याद् वुद्धिसज्ञ च यदा प्रवेत्ति सुनिश्चितं सशयहीनरूपम् ॥३७॥

अनुसधानरूप तच्चित्त च परिकीर्तितम् ॥
अहकृत्यात्मवृत्त्या तु तदहकारतागतम् ॥३८॥

तेषा रजोऽशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च ॥
प्रत्येकमिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पचधा ॥३९॥

हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानक ॥
कठदेशेऽप्युदान स्याद्व्यान सर्वशरीरग ॥४०॥

ज्ञानेन्द्रियाणि पचैव पच कर्मेंद्रियाणि च ।।
प्राणादिपचक चैव धिया च सहित मन ॥४१॥

एतत्सूक्ष्म शरीर स्यान्मम लिंग यदुच्यते ।
तत्र या प्रकृति प्रोक्ता सा राजन् द्विविधा स्मृता ॥४२॥

सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या-गुणमिश्रिता ।
स्वाश्रय या तु सरक्षेत्सा मायेति निगद्यते ॥४३॥

तस्या यत्प्रतिबिब स्याद्बिबभूतस्य चेशितु ॥
स ईश्वर समाख्यात स्वाश्रयज्ञानवान्पर ॥४४॥

सर्वज्ञ सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारक ॥
अविद्यायां तु यत्किञ्चित्प्रतिबिंब नगाधिप ॥४५॥

हे हिमालय ! मैंने अपने जिस रूप का परिचय अभी दिया है, वह मेरा रूप अलौकिक, अव्याकृत, अव्यक्त और माया से युक्त भी है । समस्त शास्त्रो मे मेरे इस रूप को सम्पूर्ण कारणो का कारण, तत्त्वो का आदि भूत, सच्चिदानन्द-विग्रह-स्वरूप बताया है । यही मेरा रूप सम्पूर्ण कर्मों का समुदायभूत, इच्छा और ज्ञान का आश्रय है । यही रूप ह्लीकार मन्त्र वाच्य है और इसे ही आदि तत्त्व माना जाता है । मेरे इसी रूप से शब्दतन्मात्रा वाला आकाश, स्पर्श एव रूप-तन्मात्रा वाले वायु और अग्नि तत्त्व की क्रमश उत्पत्ति हुई है । इसके पश्चात् रस-तन्मात्रा वाला जल और गन्धतन्मात्रा वाली पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । उपर्युक्त भिन्न २ भूतो मे से आकाश मे केवल एक गुण शब्द है । स्पर्श और शब्द ये दो गुण वायु मे विराजमान है और इसी प्रकार बुद्धिमान् व्यक्ति शब्द, स्पर्श और रूप इन तीन गुणो से युक्त तेज को मानते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण जल मे बतलाते हैं । शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाच गुणों से युक्त पृथ्वी को माना है । इन्ही पाच भूतो से महत्तत्व उत्पन्न हुआ जिसे लिंग शब्द से पुकारा जाता है । यही आत्मा का सूक्ष्म शरीर है । इसे सर्वात्मक अर्थात् सबकी आत्माओ मे विराजमान रहने वाला कहते हैं । इसी

सूक्ष्म शरीर मे यह सारा जगत् बीज रूप से स्थित रहता है। जिस शरीर से लिंग शरीर की उत्पत्ति हुई है, वह अव्यक्त और परब्रह्म का कारण शरीर है, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। इसी कारण शरीर से पचमहाभूतो की तन्मात्राओ द्वारा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पाच स्थूल महाभूतो की उत्पत्ति हुई। उन भूतों की स्थिति इस प्रकार है कि उपर्युक्त पाचो महाभूतो मे एक एक भाग उनका था और अन्य महाभूतो के चार चार भाग पाचो महाभूतो के पृथक् २ किए गये। इस प्रकार यह कारण शरीर कार्य रूप मे परिणत होकर विराट् देह वाला बन गया। यही परमात्मा का स्थूल देह है। पाचो भूतो के सत्वाश से पाच ज्ञान इन्द्रियें आँख, नाक, कान, जिह्वा एव त्वचा उत्पन्न हुई। हे राजेन्द्र! इन सभी ज्ञानेन्द्रियो का परस्पर एक दूसरे से सबन्ध है। वृत्ति भेद से चार प्रकार का अन्त करण भी इन्ही भूतो के सत्वाश से उत्पन्न हुआ। जिस समय यह अन्त करण सकल्प-विकल्प की उलझन मे पडा रहता है, तब इस अत करण को मन कहते हैं और जिस समय यह सशय से रहित सुनिश्चित वस्तु को जानने की योग्यता रखता है, तब इसे बुद्धि कहते हैं। जिस समय यह अत करण अनुसधानपूर्ण विधियो को अपनाता है, तब इसे चित्त नाम से पुकारते हैं। जिस समय इस अत करण मे अहकार की वृत्ति उत्पन्न हो जाती है, तब इसी अत करण को अहकार की सज्ञा दी जाती है। फिर प्रत्येक पचभूत मे जो रजोगुण युक्त अश थे उनसे क्रमपूर्वक भिन्न भिन्न कर्मेन्द्रियो की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक इन्द्रिय का दूसरी इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध हो गया।

इसके अनन्तर इन कर्मेन्द्रियो से ही पाच प्रकार के प्राण उत्पन्न हुए, जिन्हे दूसरे शब्दो मे प्राणो की रक्षा करने के कारण वायु कहते है। यह वायु पाच प्रकार से सारे शरीर मे विराजमान रहने लगी। जिनके स्थान इस प्रकार है— हृदय मे प्राण, गुदा मे अपान, नाभि मे समान, कण्ठ देश मे उदान और सारे शरीर मे व्यान। इस तरह पाच ज्ञानेन्द्रियें, पाँच कर्मेन्द्रिये एव बुद्धि सहित मन से सत्रह तत्त्व सूक्ष्म शरीर के रूप मे प्रकट हो गये। यही सूक्ष्म शरीर एव लिंग

शरीर कहलाता है। इस प्रकार कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर, लिंग शरीर के रूप का विशिष्ट वर्णन करने के पश्चात् अब जीव और ईश्वर के विभाग कारण का स्पष्टीकरण किया जाता है। हे राजन् ! उस समय जो प्रकृति नाम से पुकारी जाने वाली शक्ति थी, उस के भी दो भेद हैं— माया और अविद्या। शुद्ध सतोगुण प्रधान माया रूप होता है और अविद्या का रूप मलिन गुण प्रधान होता है। जो अपने आश्रय मे आए हुए की रक्षा करती है, उसे माया कहते हैं। उस शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान माया के साथ जो स्थित रहता है, उसे ही ईश्वर कहा जाता है। वह ईश्वर ही अपने आश्रय मे स्थित प्रत्येक वस्तु के ज्ञान से युक्त है अर्थात् उसको सब वस्तुओ की जानकारी रहती है। वह ईश्वर सर्वज्ञाता, सर्वकर्ता एव सब पर कृपा करने वाला है। हे पर्वतराज ! मलिन सत्व प्रधान अविद्या मे जो ईश्वर का प्रतिबिब है, उसे जीव कहते हैं ॥४५॥

तदेव जीवसज्ञ स्यात्सर्वदु खाश्रय पुन ॥
द्वयोरपीह सप्रोक्त देहत्रयमविद्यया ॥४६॥

देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रय पुन ॥
प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्मदेही तु तैजस ॥४७॥

स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविध परिकीर्तित ॥
एवमीशोऽपि सप्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदै ॥४८॥

प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा पर स्मृत ॥
स हि सर्वेश्वर साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ॥४९॥

करोति विविध विश्व नानाभोगाश्रय पुन ॥
मच्छक्तिप्रेरितो नित्य मयि राजन्प्रकल्पित ॥५०॥

उस जीव को ही सब प्रकार के सुख-दु खो का अनुभव हुआ करता है। उपर्युक्त इन तीन शरीरो से ईश्वर और जीव, इन दोनो का सम्बन्ध है। ये दोनो ईश्वर और जीव तीन देहो के अभिमानी होने से तीन कहलाते हैं— जैसे देहाभिमानी जीव 'प्राज्ञ' कहलाता है। सूक्ष्म

देहाभिमानी 'तैजस' कहलाता है और स्थूल देहाभिमानी जीव 'विश्व' कहलाता है । इस प्रकार ईश, सूत्र और विराट् पद से ईश्वर भी तीन प्रकार से पुकारा जाता है अर्थात् जीव व्यक्ति रूप है और ईश्वर समष्टिदेह रूप है। वही सर्वेश्वर अर्थात् समष्टि रूपात्मक ईश्वर स्वय जीवो पर कृपा करने के लिए नाना भोगो के आश्रय भूत इस विविध प्रकार के विश्व की उत्पत्ति करता है। हे राजन्! वह ईश्वर शब्द से पुकारी जाने वाली सत्ता मेरी शक्ति से ही प्रेरित होकर निरन्तर काम करती रहती है, अर्थात् ईश्वर शब्द से पुकारी जाने वाली सत्ता का नियन्त्रण करने वाली शक्ति मैं आद्याशक्ति भगवती ही हू ।।४०।।

इति श्रीदेवी–भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
गीता शास्त्रे द्वितीयोऽध्याय.

तृतीय अध्याय

श्री देव्युवाच—

मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ॥
साऽपि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः ॥१॥

व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता ॥
तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ॥२॥

साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदन्तः प्रविशाम्यहम् ॥
मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा ॥३॥

लोकान्तरगतिर्नोचेत्कथं स्यादिति हेतुना ॥
यथा यथा भवन्त्येव मायाभेदास्तथा तथा ॥४॥

उपाधिभेदाद्-भिन्नाऽहं घटाकाशादयो यथा ॥
उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ॥५॥

न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न ॥
मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वं मध्यस्यैवापरे जनाः ॥६॥

वदन्ति चात्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः ॥
अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा ॥७॥

जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव तु ॥
घटाकाशमहाकाशविभागः कल्पितो यथा ॥८॥

तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनः ॥
यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ॥९॥

तथेश्वरबहुत्व च मायया न स्वभावत ॥
देहेन्द्रियादिसघातवासनाभेदभेदिता ॥१०॥

अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्य प्रकीर्तित ॥
गुणाना वासनाभेदभेदिता या धराधर ॥११॥

माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्य कदाचन ॥
मयि सर्वमिद प्रोतमोत च धरणीधर ॥१२॥

ईश्वरोऽह च सूत्रात्माविराडात्माऽहमस्मि च ॥
ब्रह्माऽह विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ॥१३॥

सूर्योऽह तारकाश्चाह तारकेशस्तथाऽस्म्यहम् ॥
पशुपक्षिस्वरूपाऽह चाडालोऽह च तस्कर ॥१४॥

व्याधोऽह क्रूरकर्माऽह सत्कर्माऽह महाजन ॥
स्त्रीपुन्नपु सकाकारोऽप्यहमेव न सशय ॥१५॥

यच्च किचित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥
अतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याह सर्वदा स्थिता ॥१६॥

न तदस्ति मया त्यक्त वस्तु किञ्चिच्चराचरम् ॥
यद्यस्ति चेत्तच्छून्य स्याद् वध्यापुत्रोपम हि तत् ॥१७॥

रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि ॥
तथैवेशादिरूपेण भाम्यह नात्र सशय ॥१८॥

अधिष्ठानातिरेकेण कल्पित तन्न भासते ॥
तस्मान्मत्सत्तयैवेतत् सत्तावान्नान्यथा भवेत् ॥१९॥

(इस अध्याय मे श्री भगवती जी अपने विराट् रूप का हिमालय जी को उपदेश दे रही है।)

श्री देवी जी ने कहा,— हे हिमालय ! मेरी माया शक्ति से ही सम्पूर्ण चराचर जगत् बना हुआ है। वास्तविक रूप मे देखा जाये तो वह मायानाम से प्रसिद्ध हे। तत्त्व दृष्टि से देखने पर कोई भिन्नता प्रतीत नही देती। दोनो तत्व एक ही है,अर्थात् मैं और मेरी माया शक्ति जिसका पहले भी सहचरी शब्द से वर्णन कर दिया है । इन दोनो मे कोई अतर नही । एक केवल मैं ही वह तत्त्व हू जो सारे ससार की रचना करके माया कर्मादि के साथ इस ससार के शरीर मे प्राणदिभेद से प्रवेश करती हूँ। अगर ऐसा न करू तो प्राणियो के जन्म एव मरण की व्यवस्था चालू नही रह सकती। माया के भेदानुसार ही विश्व के प्राणियो मे मेरे भिन्न २ कार्य होते हैं। यदि माया का भेद न होता तो सब प्राणियो मे एक ही कार्य होता। जैसे— एक ही आकाश, घटाकाश और महाकाश आदि नामो से पुकारा जाता है, अर्थात् घट मे स्थित आकाश को घटाकाश और विस्तृत आकाश को महाकाश यह उपाधि भेद से कहा जाता है। उसी प्रकार मैं भी एक होती हुई उपाधि भेद से भिन्न-२ हूँ। जिस प्रकार सूर्य उच्चकोटि एव नीचकोटि की वस्तुओ को सदा प्रकाशित करता है और स्वय दूषित नही होता अर्थात् उच्चकोटि की वस्तुओ को प्रकाश करने से उसमे श्रेष्ठता और नीचकोटि की वस्तुओ को प्रकाशित करने से उसमे निकृष्टता नही आती उसी प्रकार मैं भी सारे विश्व की सृष्टि करती हुई चाहे वह श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ सृष्टि हो, दूषित नही होती, क्योकि सारी सृष्टि यद्यपि माया कर्मादि के दोषो से कभी भी युक्त नही होती, अर्थात् जीव और ईश्वर का जो अन्तर है वह माया द्वारा कल्पित है । घटाकाश और महाकाश की भाति जीवात्मा और परमात्मा के भेद को काल्पनिक समझना चाहिए । जैसे माया के प्रभाव से जीवो मे अनेकता की प्रतीति होती है, अर्थात् जीव एव ईश्वर मे इस प्रकार की प्रतीति होती है वह माया की अधीनता से ही होती है। इससे इनकी अपनी स्वतन्त्रता सिद्ध नही होती अर्थात् जीव (प्राणि पशु, पक्षी आदि भेद से) और ईश्वर (ब्रह्मा, विष्णु, महेश,) आदि भेद से जो अनेकता प्रतीत होती है, वह माया की अधीनता के कारण से ही है।

देह और इन्द्रिय आदि के समूह की वासना के भेद को उत्पन्न करने वाली जो अविद्या है वह ही जीव के भेद मे कारण है । हे धराधर !

गुण सम्बन्धी वासना के भेद को जो भिन्न २ प्रकार से प्रकट करती है, वह माया शक्ति है। हे धरणीधर ! यह सम्पूर्ण ससार मेरे मे ओत-प्रोत है, क्योकि देहाभिमानी ब्रह्मा भी मैं हू, अर्थात् मैं ही सूक्ष्म एव विराट् रूपात्मक ईश्वर हू। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, गौरी, (पार्वती) ब्राह्मी, (सरस्वती) वैष्णवी, (लक्ष्मी) ये सब मेरे ही रूप हैं। जो रूप इस ससार मे सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रगण, पशु, पक्षी, चाण्डाल चोर, व्याघ, क्रूर कर्मी और सत्कर्मी, उत्कृष्ट व्यक्ति, स्त्री, पुरुष और नपुंसक आदि के देखे जाते हैं, उन सब मे मैं ही हूँ, अर्थात् ये सब रूप मेरे ही है। इसमे कोई शका नही ।

जो कोई वस्तु जहा कही भी देखने और सुनने मे आती है, चाहे वह गुप्त हो या दृश्यमान उन सब मे व्यापक रूप से मैं ही स्थित रहती हूँ । इस चराचर विश्व मे कोई भी वस्तु ऐसी नही जो मेरे से अलग हो, अर्थात् सृष्टि का कोई भी अश मेरी शक्ति से बचा हुआ नही। यदि कोई वस्तु इस ससार मे मेरे से शून्य कही जाती है तो यह कथन वन्ध्या के पुत्र की भाति व्यर्थ है, अर्थात् जैसे वन्ध्या के कभी पुत्र नही होता, उसी प्रकार मुझ से रहित ससार का कोई भी अश नही ।

जिस प्रकार एक ही रस्सी भ्रम के कारण से सर्प एव माला के रूप मे प्रकट होती है, वैसे ही ईश्वर की ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि रूपो मे भी अनेकता की प्रतीति है, अर्थात् रस्सी एक ही है, केवल भ्रमवश माला, सर्प आदि के रूपो मे देखी जाती है । वैसे ही मैं भी ब्रह्मा, विष्णु आदि अनेक ईश्वरीय रूपो से देखी जाने वाली एक शक्ति ही हू। अधिष्ठान की सत्ता के बिना कल्पित वस्तु का ज्ञान नही होता , इसलिए मेरी सत्ता से ही यह सारा चराचर ससार सत्तावान् कहलाता है। मेरी सत्ता के बिना इसकी कुछ सत्ता नही, अर्थात् इस ससार का अधिष्ठान मैं हू और मुझ अधिष्ठान के बिना इसका कुछ अस्तित्व ही नही रहता। यह सब कुछ दृश्यमान् वस्तुजात मेरी सत्ता के ही अस्तित्व का द्योतक है ॥१९॥

हिमालय उवाच—

यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् ॥

तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि कृपा मयि ॥२०॥

व्यास उवाच—

इति तस्य वच श्रुत्वा सर्वे देवा सविष्णव ॥
ननदुर्मुदितात्मान पूजयतश्च तद्वच ॥२१॥

अथ देवमत ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा ॥
अदर्शयन्निज रूप भक्तकामप्रपूरणी ॥२२॥

अपश्यस्ते महादेव्या विराड्रूप परात्परम् ॥
द्यौर्मस्तक भवेद्यस्य चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥२३॥

दिश श्रोत्रे वचो वेदा प्राणो वायु प्रकीर्तित ॥
विश्व हृदयमित्याहु पृथिवी जघन स्मृतम् ॥२४॥

नभस्तल नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुर स्थलम् ॥
महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनलोको मुख स्मृतम् ॥२५॥

तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादध स्थित ॥
इन्द्रादयो बाहव स्यु शब्द श्रोत्र महेशितु ॥२६॥

नासत्यदस्रौ नासे स्तो गधो घ्राण स्मृतो बुधै ॥
मुखमग्नि समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी ॥२७॥

ब्रह्मस्थान भ्रू विजृम्भोऽप्यापस्तालु प्रकीर्तित ॥
रसो जिह्वा समाख्याता यमा दष्ट्रा प्रकीर्तिता ॥२८॥

दता स्नेहकला यस्य हासो माया प्रकीर्तिता ॥
सर्गस्त्वपागमोक्ष स्याद्व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितु ॥२९॥

लोभ स्यादधरोष्ठोऽस्याऽधर्ममार्गस्तु पृष्ठभू ॥
प्रजापतिश्च मेढ्र स्याद्या सृष्टा जगतीतले ॥३०॥

कुक्षि समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितु ॥
नद्यो नाड्य समाख्याता वृक्षा केशा प्रकीर्तिता ॥३१॥

कौमारयौवनजरा वयोऽस्या गतिरुत्तमा ॥
बलाहकास्तु केशा स्यु सध्ये ते वाससी विभो ॥३२॥

राजञ्छ्रीजगदम्बायाश्चन्द्रमास्तु मन स्मृत ॥
विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽन्त करण स्मृतम् ॥३३॥

अश्वादिजातय सर्वा श्रोणिदेशे स्थिता विभो ॥
अतलादिमहालोका कट्यधोभागता गता ॥३४॥

एतादृश महारूप ददृशु सुरपु गवा ॥
ज्वालामालासहस्राढ्य लेलिहान च जिह्वया ॥३५॥

दष्ट्राकटकटाराव वमत वह्निमक्षिभि ॥
नानायुधधर वीर ब्रह्मक्षत्रौदन च यत् ॥३६॥

सहस्रशीर्षनयन सहस्रचरण तथा ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाश विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥३७॥

भयकर महाघोर हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् ॥
ददृशुस्ते सुरा सर्वे हाहाकार च चक्रिरे ॥३८॥

विकम्पमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् ॥
स्मरण च गत तेषा जगदम्बेयमित्यपि ॥३९॥

अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभो ॥
बोधयामासुरत्युग्र मूर्च्छातो मूर्च्छितान्सुरान् ॥४०॥

अथ ते धैर्यमालम्ब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम् ॥
प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकठास्तु निर्जरा ॥४१॥

वाष्पगद्‌गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे ॥४१॥

हिमालय जी ने कहा,— हे देवेशि ! आपने जो अपने समष्टि रूपात्मक शरीर का वर्णन किया है, उस समष्टि रूपात्मक विराट् रूप का मैं दर्शन करना चाहता हू । यदि आपकी मेरे पर कृपा हो तो दिखला दीजिये ।।२०॥

व्यास जी कहते हैं, हे राजन् ! हिमालय जी की इस प्रकार की वाणी को सुन कर विष्णु सहित सब देवताओ का हृदय आनन्द से विभोर हो गया। हिमालय के वचन का अभिनन्दन करते हुए उन्होने भी कहा, हे भगवति ! हम भी आपके इस रूप का दर्शन करना चाहते है । इसके बाद देवताओ की इस प्रकार दर्शन करने की इच्छा को समझ कर भक्तो की कामनाओ को पूर्ण करने वाली श्री भगवती शिवा शक्ति ने अपना रूप उनके समक्ष कर दिया, अर्थात् श्री भगवती जी ने उन्हे दर्शन दिये । अब वे श्री भगवती महादेवी के परात्पर "सर्वोत्तम" विराट् रूप को देखने लगे । उस रूप मे आकाश श्री भगवती जी का मस्तक था । चन्द्रमा और सूर्य नेत्र थे । दिशाए उनके कान थे । वेद-वाणी और वायु उस रूप मे प्राण थे । सारा विश्व उस रूप मे हृदय का काम कर रहा था । उस रूप मे पृथ्वी जाघ थी । पाताल उस रूप मे नाभि था । ज्योति-चक्र छाती के रूप मे था । महर्लोक ग्रीवा और जन लोक श्री भगवती जी का मुख था । सत्य लोक से नीचे रहने वाला तपोलोक ललाट था । इन्द्र आदि बाहुए थी । शब्द उस रूप मे श्रोत्र था । विद्वान् लोगो के कथनानुसार अश्विनीकुमार उस विराट् रूपिणी श्री भगवती की नासिका थे । गन्ध घ्राणेन्द्रिय था । अग्निमय मुख था । दिन और रात दोनो पलके थी । ब्रह्मा भौहो के स्थान मे थे । जल तालु था । रस जिह्वा थी । यमराज दाढ थे । उन महेश्वरी के दान्त स्नेह कला रूप मे थे । माया हसी के रूप मे और सृष्टि कटाक्ष के रूप मे थी । लज्जा रूप मे ओष्ठ थे । उस विराट् महेश्वरी श्री भगवती का होठ लोभ था । अधर्म मार्ग पृष्ठ भूमि कहलाता था । जो इस ससार मे सृष्टि के बनाने वाले कहे जाते हैं, वे प्रजापति ब्रह्मा उस विराट् रूप मे लिंग थे । समुद्र पेट था । पर्वत हड्डियो के रूप मे विराजमान थे । उस श्री भगवती महेश्वरी के रूप मे नदिया नाडियो के रूप मे विराजमान थी । वृक्षो के समूह उस रूप

मे केश थे। कुमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्था उस श्री भगवती के रूप मे आयु थे। उस श्री भगवती के रूप मे बादल सिर के बालो के रूप मे विराजमान थे। प्रात कालीन एव सायकालीन दोनो सन्ध्याए श्री भगवती जी के दो वस्त्रो के रूप मे विराजमान थी। हे राजन्! उस श्री भगवती जगदम्बा के विराट् रूप मे उनका मन चन्द्रमा था। हरि (विष्णु) विवेक शक्ति और रुद्र (शिव) अन्त करण रूप मे थे। अश्वजाति से सम्बन्ध रखने वाले जितने प्राणी हैं, वे सब उस विराट् रूप मे श्री महेश्वरी जी के कटि भाग थे। अतल से लेकर पाताल तक जितने महालोक है, वे सब जगदम्बा जी के कमर से निचले भाग में प्रकट हो रहे थे। श्री भगवती जगदम्बा जी के ऐसे विराट् रूप को उन देवताओ ने देखा। श्री भगवती जी के शरीर से उस समय हजारो प्रकार की ज्वालाए निकल रही थी और वे अपनी जिह्वा से बार बार अपने होठो को चाटती हुई प्रतीत हो रही थी। जाडो को बजा बजा कर चीखना, आखो द्वारा आग बरसाना, ये स्वाभाविक रूप मे हर समय उनमे हो रहे थे, अर्थात् जाडो को बजा बजा कर चीखना और आंखो से आग का बरसना यह उस रूप का स्वाभाविक गुण था। उस समय उनके हाथो मे नाना प्रकार के शस्त्र अस्त्र शोभा दे रहे थे। उनका वेष शूरवीरो की भान्ति था और ब्राह्मण और क्षत्रिय उस रूप मे उनका आहार बने हुए थे, अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रियो के भोजन से अपने शरीर की पुष्टि कर रही थी। उस समय उनका शरीर हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार चरणो से सम्पन्न था। उस शरीर से करोडो सूर्यो के समान और करोडो बिजलियो के समान प्रभा फैल रही थी। वह श्री भगवती जी का विराट् रूप बडा भयकर था। उसकी आकृति बहुत क्रूर थी। उस रूप को देखते ही हृदय और नेत्र भयभीत होते थे। ऐसे उस भयकर विराट रूप को देखकर देवता लोग हा-हाकार करने लगे। उनके हृदय कम्पित हो गये। उन्हे उस समय इस प्रकार की कोई स्मृति नही रही कि ये श्री भगवती जगदम्बा है। उस विराट् रूप के समक्ष जो चारो दिशाओ मे मूर्तिमान् वेद खडे थे, उन्होने घोर मूर्छा से व्याप्त देवताओ को चेतना प्रदान की।

जब देवता लोग वेदो द्वारा मूर्छा से रहित हो गये, तब उन्होने धैर्य धारण करके वेद सम्बन्धी श्रेष्ठ श्रुतिओ का स्मरण किया। प्रेम के

अश्रुओ से व्याप्त और गद्गद् वाणी से स्तुति करने के लिए वे श्री भगवती जी के समक्ष उपस्थित हो गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥४१॥

देवा उचु —

अपराध क्षमस्वाम्ब पाहि दीनास्त्वदुद्भवान् ॥४२

कोप सहर देवेशि सभया रूपदर्शनात् ॥
का ते स्तुति प्रकर्तव्या पामरैर्निजरैरिह ॥४३॥

स्वस्याप्यज्ञेय एवासो यावान्यश्चस्वविक्रम ॥
तदर्वाग्जायमानाना कथ स विषयो भवेत् ॥४४॥

नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके ॥
सर्ववेदान्तससिद्धे नमोह्लीकारमूर्तये ॥४५॥

यस्मादग्नि समुत्पन्नो यस्मात् सूर्यश्चचन्द्रमा ॥
यस्मादोषधय सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नम ॥४६॥

यस्माच्च देवा सभूता साध्या पक्षिण एव च ॥
पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नम ॥४७॥

प्राणापानौ व्रीहियवौ तप श्रद्धा ऋत तथा ॥
ब्रह्मचर्य विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नम ॥४८॥

सप्त प्राणार्चिषो यस्मात्समिध सप्त एव च ॥
होमा सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नम ॥४९॥

यस्मात्समुद्रा गिरय सिधव प्रचरन्ति च ॥
यस्मादोषधय सर्वा रसास्तस्मै नमो नम ॥५०॥

यस्माद्यज्ञ समुद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणा ॥
ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नम ॥५१॥

नम पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयो ॥
अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नम ॥५२॥

उपसहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम् ॥
तदेव दर्शयास्माक रूप सुन्दरसुन्दरम् ॥५३॥

देवता बोले —कि हे माता! हम आपकी दीन सन्तान हैं। हमारा अपराध क्षमा करके आप हमारी रक्षा करो। हे देवेशि! आप अपने क्रोध से हमे बचाओ क्योंकि हम आपके इस विराट् रूप को देखकर बहुत भयभीत हो गये हैं। हम आपकी स्तुति करने मे असमर्थ हैं। आपका पराक्रम कितना है और कैसा है, इस विषय को तो हम स्वय ही समझ सकते हैं। उस पराक्रम को आधुनिक देवता लोग नही समझ सकते। भू-मण्डल पर शासन करने वाली सत्ता को, प्रणव रूप (ओंकार) से सुशोभित, समस्त वेदान्तो से ससिद्ध (ह्रीकार) रूप को धारण करने वाली हे भुवनेश्वरि! भगवति! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप अग्नि का उत्पत्ति स्थान हैं। आप से ही सूर्य और चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं। आप से ही विश्व के कल्याण निमित्त सब प्रकार की औषधियो की उत्पत्ति हुई है। हे सर्वस्वरूपिणि! भगवति! आपको नमस्कार है। आप से ही समस्त देवता साधुजन, पक्षी, पशु और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। इसलिए हे सर्वात्मिके! हे शक्ति! आपको नमस्कार है। आप से ही प्राण, अपान व्रीहि, यव,तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि उत्पन्न हुई हैं, इसलिए हे भगवति! आपको वारम्बार नमस्कार है। आपसे ही सातो प्राण, सात समिधाए, सात लोको की उत्पत्ति हुई है, इसलिए आप सर्वस्वरूपिणी हो। आपको वारम्बार नमस्कार है। आपके द्वारा ही समुद्र पर्वत, औषध और सम्पूर्ण रस उत्पन्न हुए हैं। आप उपर्युक्त गुणो से युक्त हैं, इसलिए आपको वारम्बार नमस्कार है। आपके द्वारा यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणा, ऋचा, यजुप् तथा साम मन्त्र की रचना हुई है, इसलिए हे सर्वात्मक शक्ति! आपको बारम्बार नमस्कार है, हे माता! आगे पीछे, इधर-उधर, नीचे ऊपर, चारो ओर से आपको बारम्बार नमस्कार है। हे देवेशि! इस अलौकिक रूप को आप बन्द करके वही अपना परम सुन्दर, सौम्य रूप दिखाने की कृपा करें ॥५३॥

।। व्यास उवाच ।।

इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदंबा कृपार्णवा।
संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम् ।।५४।।

पाशांकुशवराभीतिधरं सर्वांगकोमलम्।
करुणापूर्णनयनं मंदस्मितमुखाम्बुजम् ।।५५।।

दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिता ।।
शांतचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ।।५६।।

व्यास जी कहने लगे, हे राजन्! श्री भगवती जगदम्बा ने डरे हुए देवताओं को देखकर अपने भयंकर रूप को छिपा लिया और उसी समय अपने मनोहर रूप के दर्शन कराये, क्योंकि ये भगवती कृपा के समुद्र हैं, इसीलिए अपने भक्तों पर इन्होंने शीघ्र ही कृपा की। जो रूप उन्हें दिखाया, उस रूप का वर्णन इस प्रकार है —उस समय श्री भगवती जी पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्रा धारण किए हुए थीं। उनके उस रूप में सभी अंग कोमल थे। उनकी आँखें करुणा से परिपूर्ण थीं। कमल जैसे मुख वाली वह भगवती मन्द-मन्द उपहास से सुशोभित हो रही थीं। देवताओं ने देवी के उस सुन्दर रूप को जिस समय देखा, तब उनका सारा भय दूर हो गया। शान्त चित्त होकर हर्ष-परिपूर्ण एवं गद्गद वाणी से सर्वेश्वरी श्री भगवती जी को प्रणाम करने लगे ।५६।।

इति श्रीदेवी–भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
देवी गीता शास्त्रे तृतीयोऽध्याय

चतुर्थ अध्याय

श्री देव्युवाच—

क्व यूय मन्दभाग्या वै क्वेद रूप महाद्भुतम् ॥
तथापि भक्तवात्सल्यादीदृश दर्शित मया ॥१॥

न वेदाध्ययनैर्न दानैस्तपसेज्यया ॥
रूप द्रष्टुमिद शक्य केवल मत्कृपा विना ॥२॥

(इस अध्याय मे विशिष्ट प्रकार का ज्ञानोपदेश हिमालय को लक्ष्य रख कर दिया जा रहा है)

श्री देवी जी ने कहा— हे देवताओ ! कहा आप जैसे मन्दभाग्य देवता और कहा यह मेरा अद्भुत स्वरूप, अर्थात् आप मेरे इस अद्भुत स्वरूप को देखने मे असमर्थ थे क्योकि आपका तपोबल आदि क्षीण हो चुका था । ऐसा होने पर भी भक्तो की वात्सल्यता के कारण आपको इस स्वरूप के दर्शन करवा दिये है । यह मेरा स्वरूप मेरी कृपा के अतिरिक्त किसी को भी दिखाई नही दे सकता । वेदो का अध्ययन, योग, दान, तप, यज्ञ जितने भी साधन हैं, मेरे इस स्वरूप को दिखाने मे असमर्थ है। यह सब कुछ मेरी कृपा के आधार से ही आप लोगो को दिखाई दे रहा है ॥२॥

प्रकृत शृणु राजेन्द्र परमात्माऽत्र जीवताम् ॥
उपाधियोगात्सप्राप्त कर्तृत्वादिकमप्युत ॥३॥

क्रिया करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतव ॥
नानायोनीस्तत प्राप्य सुख दुखैश्च युज्यते ॥४॥

पुनस्तत्सस्कृतिवशान्नानाकर्मरत सदा ॥
नानादेहान्समाप्नोति सुखदु खैश्च युज्यते ॥५॥

घटीयन्त्रवदेतस्य न विराम कदापि हि ।
अज्ञानमेव मूल स्यात्तत काम क्रियास्तत ॥६॥

तस्मादज्ञाननाशाय यतेत नियत नर ॥
एतद्धि जन्मसाफल्य यदाऽज्ञानस्य नाशनम् ॥७॥

पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशाऽपि च ।
अज्ञाननाशने शक्ता विद्यैव तु पटीयसी ॥८॥

न कर्म तज्ज नोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे ।
प्रत्युताशा ज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ॥९॥

अनर्थदानि कर्माणि पुन पुनरुशति हि ।
ततो रागस्ततो द्वेषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥१०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञान सपादयेन्नर ।
कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यत कर्माप्यावश्यकम् ॥११॥

ज्ञानादेव हि कैवल्यमत स्यात्तत्समुच्चय ।
सहायता व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च ॥१२॥

इति केचिद्वदत्यत्र तद्विरोधान्न सभवेत् ।
ज्ञानाद्धृद्ग्रथिभेद स्याद्धृद्ग्रथौ कर्मसभव ॥१३॥

यौगपद्य न सभाव्य विरोधात्तु ततस्तयो ।
तम प्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्य न सभवि ॥१४॥

हे राजन् ! आप प्रकृत विषय, अर्थात् ब्रह्म विद्या का, उपदेशात्मक जो वर्णन चल रहा था, उसे सुनिये। यह परमात्मा ही उपाधि भेद से जीव सज्ञा को प्राप्त होता है। फिर उस मे कर्त्तव्य परायणता के गुण, अर्थात् कर्त्ता के गुण आ जाते हैं। धर्म एव अधर्म नाना प्रकार के कर्मों के करने

की शक्ति उसमे आ जाती है। जीव होने के कारण नाना योनियो मे जन्म लेकर वह सुख-दु ख को भोगने वाला बनता है। फिर उस जीव-आत्मा को अपने सस्कारो के प्रभाव के कारण नाना प्रकार के शरीर धारण करने पडते हैं। यह जीव सुख-दु ख से कदापि निवृत्त नही होता। घटीयन्त्र की भाति यह जीव कभी भी विरामता को नही प्राप्त होगा, अर्थात् घडी की भाति इस जीव मे भी क्रिया करने का क्रम सदा चलता ही रहता है। सलग्नता मे जीव सदा लगा ही रहता है। यहा जीव की जो कार्य मे सलग्नता है, उसका मूल कारण केवल अज्ञान ही है, इसलिए जीव को अज्ञान नाश के निमित्त सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। अज्ञान का सदा के लिए नाश हो जाना ही इस जीव की सफलता का द्योतक है।

पुरुषार्थ की समाप्ति और जीवन मुक्त दशा की उपलब्धि अज्ञान नाश पर ही निर्भर है। इस प्रकार की विद्या को ही श्रेष्ठ विद्या कहा गया है।

हे हिमालय ! अज्ञान से उत्पन्न कर्म अज्ञान को दूर करने मे सफल नही हो सकता क्योकि ये दोनो परस्पर विरोधी धर्म हैं। इस प्रकार अज्ञानोत्पन्न कर्म द्वारा अज्ञान नष्ट करने की आशा करना ही व्यर्थ है, क्योकि अनर्थ करने वाले कर्म अकस्मात् होते रहते हैं। राग-द्वेष आदि अनर्थों का क्रम कभी समाप्त नही होता, इसलिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपना पर्याप्त समय ज्ञान की प्राप्ति मे ही व्यतीत करे। उसे ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त सब प्रकार के प्रयत्न करने मे उद्यत रहना चाहिये। समुच्चयवादियो के अनुसार "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इस श्रुति के अनुसार कर्म का करना आवश्यक है। इसके साथ साथ मोक्ष पद की प्राप्ति मे साधक होने के कारण ज्ञान की भी आवश्यकता है। हित चिंतक कर्म ज्ञान का सहायक होता है। यदि कई लोग कहे कि अज्ञान मूल कर्म भी ज्ञान मे सहायक है, यह ठीक नही क्योकि ज्ञान और अज्ञानोत्पन्न कर्म ये दानो परस्पर विरोधी धर्म है। हृदय की ग्रन्थि को छेदन करने मे ज्ञान साधक होता है और कर्म उस ग्रन्थि को बनाने मे साधक होता है। फिर ये दोनो प्रकार के असहकारी (एक दूसरे के विरोधी) कार्य कारण एक स्थान पर नही रह सकते, जैसे– अन्धकार और प्रकाश इन दोनो का एक स्थान पर होना नितान्त

असम्भव है, अर्थात् ज्ञान एव अज्ञानजन्य कर्म ये दोनो परस्पर विरोधी है, इसलिए कर्म करने से नाना प्रकार के राग, द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं, जोकि अज्ञान के कारण माने गये हैं । ज्ञान के होने पर उनका रहना भी असम्भव होता है, इसलिए अज्ञान से उत्पन्न कर्म के होने पर ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। ज्ञान से अज्ञानजन्य कर्म का नाश हो ही जाता है ॥१४॥

तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते।।
चित्तशुद्ध्यतमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नत ॥१५॥

शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्य सत्त्वसभव ॥
तावत्पर्यंतमेव स्यु कर्माणि न तत परम् ॥१६॥

तदते चैव सन्यस्य सश्रयेद्गुरुमात्मवान् ॥
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ च भक्त्या निर्व्याजया पुन ॥१७॥

वेदान्तश्रवण कुर्यान्नित्यमेवमतद्रित ॥
तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत् ॥१८॥

तत्त्वमस्यादिवाक्य तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम् ॥
ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ॥१९॥

हे महामते ! सब प्रकार के वैदिक कर्मो को करने के लिए मनुष्य को उद्यत रहना चाहिये। वैदिक कर्मो के करने से मनुष्य के अन्त करण की शुद्धि हो जाती है। अन्त करण की शुद्धि के निमित्त सदा मानव को वैदिक कर्मों का आश्रय लेना आवश्यक है।

उन वैदिक कर्मो का वर्णन इस प्रकार हे । शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्व गुण का उत्पन्न होना, अर्थात् चित्त शुद्धि, ये कर्म ही करने योग्य हैं। इनके करने से मानसिक शुद्धि हो जाती है। इससे परे कोई कर्म शेष ही नही रह जाता । उक्त कर्म करने के पश्चात् ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति सन्यास आश्रम का आश्रय लेकर श्रोत्रिय एव ब्रह्म-विद्या

से युक्त गुरु के पास रहे, शुद्ध विशुद्ध भक्ति से सम्पन्न होकर वेदान्त का श्रवण करे और सदा सावधान रहकर "तत्त्वमसि" इस वाक्य के अर्थ पर विचार करता रहे।

विशुद्ध अन्तरात्मा वाले व्यक्ति को "तत्त्वमसि" इस वाक्य का ज्ञान इसलिए हो सकता है कि उसका मन एकाग्र होकर इसे समझने के लिए सदा उद्यत रहता है और यह वाक्य जीव और ब्रह्म मे एकता का बोधक है। जिस समय जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान उस व्यक्ति को होता है तो वह सासारिक कष्टों से दूर होकर मेरे रूप मे लीन हुआ मेरा ही रूप हो जाता है ॥१९॥

पदार्थावगति पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्तत ॥
तत्पदस्य च वाक्यार्थो गिरेऽह परिकीर्तित ॥२०॥

त्वपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न सशय ॥
उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधै ॥२१॥

वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्य नैव घटेत हि ॥
लक्षणाऽत प्रकर्तव्या तत्वयो श्रुतिसस्थयो ॥२२॥

चिन्मात्र तु तयोर्लक्ष्य तयोरैक्यस्य सभव ॥
तयोरैक्य तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ॥२३॥

देवदत्त स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता ॥
स्थूलादिदेहरहितो ब्रह्म सपद्यते नर ॥२४॥

पचीकृतमहाभूतसभूत स्थूलदेहक ॥
भोगालयो जराव्याधिसयुत सर्वकर्मणाम् ॥२५॥

मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटमायामयत्वत ॥
सोऽय स्थूल उपाधि स्यादात्मनो मे नगेश्वर ॥२६॥

ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपंचकसंयुतम् ॥
मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः ॥२७॥

अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥
द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः ॥२८॥

अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः ॥
देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वर ॥२९॥

उपाधिविलयं जाते केवलात्माऽवशिष्यते ॥
देहत्रये पंचकोशा अन्तःस्था सन्ति सर्वदा ॥३०॥

पंचकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते ॥
नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते ॥३१॥

हे हिमालय ! पहले पदार्थ का ज्ञान होता है उसके बाद वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। यहां तत्पद का जो वाच्यार्थ है वह मैं ही हूं। त्वं पद का वाच्यार्थ जीव है इसमें कोई शंका नहीं। विद्वान् व्यक्ति "असि" इस पद से तत्, और त्वं इन दोनों पदों की एकता सिद्ध करते हैं। वाच्यार्थ पृथक् पृथक् होने से इन दोनों पदों में तत् अर्थात् ब्रह्म एवं जीव इन दोनों में एकता नहीं हो सकती। ऐसी परिस्थिति में लक्षणा वृत्ति से अर्थ का ज्ञान करना चाहिये। दोनों का लक्ष्यार्थ यदि चित् को मान लिया जाये तो इन दोनों में एकता हो सकती है। चित् का बोध होने पर इन दोनों में स्वगत भेद समाप्त होकर इन दोनों में एकता आ जाती है। यह वही देवदत्त है, जिसे किसी अन्य समय देखा गया था। यहां पर देवदत्त के विपरीत होने पर भी इसे वही मान लेना लक्षणा कही जाती है। इसी प्रकार स्थूल देह से रहित ब्रह्म को ही नर या जीव कहते हैं। पांच महाभूतों से उत्पन्न स्थूल शरीर भोगों का आश्रय बनता है। इसे सम्पूर्ण कामों के भोग भोगने के लिए वृद्ध एवं रोगी बनना पडता है। हे पर्वतराज ! माया के प्रभाव से स्पष्ट प्रतीत देने वाला यह संसार बिल्कुल मिथ्या है, क्योंकि यह स्थूल शरीर मेरी ही

आत्मा का दूसरा रूप है, जो पाच ज्ञानेन्द्रिये पाच प्रकार के प्राण, मन एव बुद्धि से युक्त है। इमे बुद्धिमान् व्यक्ति सूक्ष्म शरीर कहते हैं। अपचीकृत भूत से उत्पन्न यह सूक्ष्म शरीर है। इसे आत्मा का शरीर मानते हैं। सुख-दुःख का अनुभव करने वाला यह दूसरा स्थूल शरीर कहलाता है। अनादि, अनिर्वचनीय एव न जानने योग्य होने के कारण आत्मा के इस कारण शरीर को तीसरा शरीर माना गया है। जिस समय सूक्ष्म, स्थूल और कारण ये तीनो आत्मा की उपाधिया समाप्त हो जाती हैं, उस समय केवल परमात्मा ही शेप रह जाता है। तीनो देहो के भीतर पचकोष सदा स्थित रहते हैं। पचकोष का परित्याग होने पर ब्रह्मपुच्छ की उपलब्धि होती है। ब्रह्मपुच्छ मेरे उस अवर्णनीय रूप को कहते हैं, जिसका परिचय देते समय श्रुतियाँ नेति नेति शब्द कह कर चुप हो जाती है अर्थात् श्रुतियें भी मेरे उस रूप का वर्णन नही कर सकती ॥३१॥

न जायते म्रियते तत्कदाचिन्नाय भूत्वा न वभूव कश्चित् ॥
अजो नित्य शाश्वयोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥३२॥

हत चेन्मन्यते हतु हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभो तौ न विजानीतो नाय हति न हन्यते ॥३३॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्माऽस्य जतोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमस्य ॥३४॥

आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु ।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मन प्रग्रहमेव च ॥३५॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेपु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिण ॥३६॥

यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्क सदाऽशुचि ।
न तत्पदमवाप्नोति ससार चाधिगच्छति ॥३७॥

जन्म नही लेते । जिस व्यक्ति का बुद्धि रूपी सारथी चतुर है और मनरूपी लगाम को सावधानी से पकड़े रहता है, वही सारथी मार्ग को पार करके मेरे धाम मे पहुच जाता है, अर्थात् ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर आदि शब्दो से पुकारी जाने वाली आद्याशक्ति मुझ भगवती के तत्त्व को समझकर मेरे धाम मे पहुँच जाता है, अर्थात् मेरे क्रिया-कलापो को समझता हुआ मुझ आद्याशक्ति भगवती मे ही लीन हो जाता है । फिर उसे जन्म-जन्मातरो का कष्ट नही भोगना पडता । इस प्रकार के उपर्युक्त विवेचन को सुन कर बुद्धिपूर्वक उसका मनन करके मानव को स्वय अपने आप को निश्चित रूप से पहचानना चाहिए और फिर सावधानी से एक आसन पर बैठ कर उस निश्चित रूप से समझी हुई आत्मा के विषय मे चिन्तन करना चाहिये। यही एक श्रेष्ठ मार्ग मेरे धाम की प्राप्ति का साधन है। ऐसा करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारो कामनाओ की प्राप्ति मानव कर लेता है। इसमे सर्वप्रथम आत्म-चिन्तन करना आवश्यक है। इस समय आत्म चिन्तन के विशिष्ट उपायो का वर्णन यहा विधि पूर्वक किया जाता है।

हे राजन् ! पहले योग का अभ्यास करके अक्षरत्रय (ह्री) मन्त्र का चिन्तन करना चाहिये। यह मन्त्र देवी प्रणव कहलाता है। इस मन्त्र के चिन्तन का और अर्थ का भी ध्यान आवश्यक है। इस मन्त्र मे हकार, स्थूलदेहात्मक, रकार सूक्ष्मदेहात्मक और ईकार कारणदेहात्मक है। यह 'ह्री' रूप मेरा अपना रूप है। बुद्धिमान् व्यक्ति को इस प्रकार समष्टि शरीर मे क्रमश तीनो बीजो (ऐं, ह्री, क्ली,) को समझ कर समष्टि और व्यष्टि दोनो ही रूपो मे एक मेरा ही चिन्तन करना चाहिये । समाधिकाल से पूर्व मेरे ऐसे रूप, अर्थात् स्थूलदेहात्मक, सूक्ष्मदेहात्मक, कारणदेहात्मक, 'ह्री' बीजमय रूप की धारणा करना उचित है। इसके पश्चात् दोनो नेत्र बद करके मुझ जगतीश्वरी देवी का ध्यान करना चाहिये। उस समय प्राण वायु और अपान वायु को समान स्थिति मे रखना चाहिये। दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर रखनी चाहिये। ध्यान के समय विषय भोग की आकाक्षा किसी पर द्वेष और ईर्ष्या आदि भाव नही होने चाहियें। किसी पर्वत की गुफा मे या एकान्त स्थान मे विशुद्ध भक्ति से युक्त होकर आसन की शास्त्रीय विधियो को अपना कर आसन,

अर्थात् बैठने की मुद्रा को लगाकर बैठना चाहिये। उस समय आसन की अवस्था मे विश्व रूप हकार को परम तेजस्वी दिव्य रकार मे, रकार को परम ज्ञान रूप ईकार मे, और ईकार को ह्रीकार मे प्रविलापन, अर्थात् सम्मिलित करे फिर मेरे सच्चिदानंदमय रूप का चिन्तन करे, जोकि वाच्य और वाचकता से रहित एव द्वैत भाव से शून्य है।

हे राजन्! इस प्रकार ध्यान करके श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार कर लेता है। उसे मेरी सारूप्यता प्राप्त हो जाती है, अर्थात् वह व्यक्ति मेरे रूप से तादात्म्य सम्बन्ध जोडकर मेरे रूप के साथ मिल जाता है। उसमे मेरी विश्वव्यापी भावनाए विकसित होने लगती हैं, क्योकि मेरा चिन्तन करने से उस व्यक्ति की बुद्धि मे द्वेष भाव का अभाव हो जाता है। इस प्रकार के योग से सम्पन्न होकर जो व्यक्ति मेरे इस सर्वोत्तम रूप के दर्शन कर लेता है, उसका गर्व सम्बन्धी अज्ञान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, अर्थात् वह व्यक्ति कर्मो के झझट से निवृत्त होकर मेरे विशुद्ध रूप का इस प्रकार योग वृत्ति द्वारा ज्ञान प्राप्त कर इहलौकिक एव पारलौकिक, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कामनाओ को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार का यह ज्ञान ब्रह्म ईश्वर, महालक्ष्मी आदि शब्दो से पुकारी जाने वाली मुझ आद्याशक्ति एव जीव मे एकता का द्योतक है ॥५०॥

इति श्रीदेवी–भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
गीता शास्त्रे चतुर्थोऽध्याय

पचमोऽध्याय

हिमालय उवाच—

योग वद महेशानि साग सवित्प्रदायकम् ।
कृतेन येन योग्योऽह भवेय तत्त्वदर्शने ॥१॥

श्री देव्युवाच—

न योगो नभस पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
ऐक्य जीवात्मनोराहुयोग योगविशारदा ॥२॥

तत्प्रत्यूहा षडाख्याता योगविघ्नकरानघ ।
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसज्ञकौ ॥३॥

योगागैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयु ।
यम नियममासनप्राणायामौ तत परम् ॥४॥

प्रत्याहार धारणाख्य ध्यान सार्ध समाधिना ।
अष्टागान्याहुरेतानि योगिना योगसाधने ॥५॥

अहिसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्य दयाऽऽर्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहार शौच चेति यमा दश ॥६॥

तप सतोष आस्तिक्य दान देवस्य पूजनम् ।
सिद्धातश्रवण चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥७॥

दशैते नियमा प्रोक्ता मया पर्वतनायक ॥
पद्मासन स्वस्तिक च भद्र वज्रासन तथा ॥८॥

वीरासनमिति प्रोक्त क्रमादासनपञ्चकम् ॥८½॥

(इस अध्याय मे नाना प्रकार के योगो का वर्णन किया जा रहा है।)

हिमालय जी ने कहा,— हे भगवति परमेश्वरि! आप ज्ञान की उत्पत्ति कराने वाले सागोपाग योग का वर्णन करें, जिसके द्वारा मैं आप के तत्त्व दर्शन का पूर्ण अधिकारी बन सकू। इस प्रश्न को सुनकर श्री भगवती जी बोली — योग न आकाश मे है, न पृथ्वी और पाताल मे। जो जीव और आत्मा की एकता है, वही योग कहलाता है। योग के विद्वानो का भी यही कहना है। हे निष्पाप हिमालय! उस योग मे विघ्न की उत्पत्ति करने वाले ६ दोष होते हैं, अर्थात् जीव और आत्मा का सयोग रूप जो योग है, उसे नष्ट करने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्या ये ६ दोष हैं। योग के जानने वाले साधक को योग के अगो द्वारा इन ६ विघ्नो का नाश करके योग मे सफलता प्राप्त करनी चाहिये।

योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, भावना और समाधि य आठ अग हैं। योग के साधको को इनकी साधना अवश्य करनी चाहिये। यम भी दश कहे गये है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमिताशन और पवित्रता। हे पर्वतराज! नियम भी योग मे दश ही बतलाये गये है, जो इस प्रकार हैं —

तप, सन्तोष, आस्तिकभाव, दान, देवताओ का पूजन, सिद्धान्त का श्रवण, बुरे कामो से लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन। अब क्रम पूर्वक पाच आसन योग मे जो कार्यकारी होते हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है — (१) पद्मासन, (२) स्वस्तिकासन, (३) भद्रासन, (४) वज्रासन और (५) वीरासन। ८॥

ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले शुभे ।९॥

अगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्या व्युत्क्रमात्तत ।
पद्मासनमिति प्रोक्त योगिना हृदयङ्गमम् ।१०॥

पद्मासन का लक्षण

दोनो पैरो के दोनो तलवो को जाघो पर रखे। फिर हाथो को पीठ की ओर ले जाकर दाहिने पैर के अगूठे को पकडे। योगिजनो के हृदय मे प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला इस प्रकार का जो आसन है, उसे पद्मासन कहते है ।१०॥

जानूर्वोरतरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे ।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिक तत्प्रचक्षते ।११॥

स्वस्तिकासन के लक्षण

जाघ और घुटनो के बीच मे पैर के तलवो को अच्छी तरह रखे। फिर शरीर को सीधा करके बैठ जाना स्वस्तिकासन कहलाता है ॥११॥

सीवन्या पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्म सुनिश्चितम् ॥
वृषणाध पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्याम् परिबन्धयेत् ॥१२॥

भद्रासनमिति प्रोक्त योगिभि परिपूजितम् ॥

भद्रासन के लक्षण

योगिजन भद्रासन उस आसन को कहते हैं, जिसमे अण्डकोष की शिरा के नीचे सीवन के दोनो ओर दोनो एडियो को अच्छी तरह अड-कोषो के नीचे रखकर फिर दोनो पैरो को हाथो से पकड कर बैठना हो, अर्थात् इस प्रकार की बैठने की स्थिति को भद्रासन कहा जाता है। योगिजन इस आसन का विशेष आदर करते हैं ॥१२½॥

ऊर्वो पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वो प्रत्यड्मुखागुली ॥१३॥
करौ विदध्यादाख्यात वज्रासनमनुत्तमम् ॥१३½॥

वज्रासन के लक्षण

इस असान मे दोनो पैर क्रम पूर्वक दोनो जाघो पर रखकर दोनो

घुटनो के निचले भाग मे सीधी अगुली वाले दोनो हाथ रखकर बैठने की जो स्थिति है, उसे वज्रासन कहते हैं ॥१३॥

एक पादमध कृत्वा विन्यस्योरु तथोत्तरे ॥१४॥
ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् ॥ १५½॥

वीरासन

जिस आसन मे योगिजन एक जाघ के नीचे एक पैर को रखकर और शरीर को सीधा करके बैठते है, उस बैठने की स्थिति का नाम वीरासन है ॥१४½॥

(प्राणायाम के ३ भेदो का वर्णन)

इडया कर्षयेद्वायु वाह्य षोडशमात्रया ॥१५॥

धारयेत्पूरित योगी चतु षष्ट्या तु मात्रया ।
सुषुम्नामध्यग सम्यग्द्वात्रिशन्मात्रया शनै ॥१६॥

नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद्योगवित्तम ।
प्राणायाममिम प्राहुर्योगशास्त्रविशारदा ॥१७॥

पूरक प्राणायाम के लक्षण

जितने समय मे सोलह बार प्रणव का उच्चारण हो सके, उतने समय मे इडा (अर्थात् बायी नासिका) के द्वारा बाहर की वायु को खीचना, यह पूरक प्राणायाम कहलाता है ।

कुंभक प्राणायाम के लक्षण

फिर उपर्युक्त क्रम से खीची हुई वायु को चौंसठ बार प्रणव का उच्चारण करने के समय तक सुषुम्णा मे रोकना कुम्भक प्राणायाम कहलाता है ।

रेचक प्राणायाम के लक्षण

इस प्रकार रोकी हुई वायु को बत्तीस बार प्रणव के अर्थात् "ओम्" के उच्चारण मे जितना समय लगता है, उतने समय तक धीरे-धीरे पिंगला (दक्षिण नासिका) के द्वारा जो बाहर निकालना है, इस प्रक्रिया को रेचक प्राणायाम के नाम से पुकारते है। योगशास्त्र के ज्ञाता इस पूरक, कुम्भक और रेचक प्रक्रिया को ही प्राणायाम के नाम से पुकारते है ॥१७॥

भूयो भूय क्रमात्तस्य बाह्यमेव समाचरेत् ।

मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ॥१८॥

इस प्रकार बार बार बाहर की वायु को लेकर पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम का अभ्यास करते समय क्रम पूर्वक प्रणव के उच्चारण का समय बढ़ता रहे। इस प्रकार का प्राणायाम पहले बारह बार और तदनन्तर क्रमश और भी अधिक बार वायु को खीचने, धारण करने एव निकालने का समय अनुपात से बढाता जाये।१८॥

जपध्यानादिभि सार्धं सगर्भं त विदुर्बुधा ।
तदपेत विगर्भं च प्राणायाम परे विदु ॥१९॥

क्रमादभ्यस्यत पुसो देहे स्वेदोद्गमोऽधम ॥
मध्यम कपसयुक्तो भूमित्याग परो मत ॥२०॥

उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥

प्राणायाम दो प्रकार के होते है — सगर्भ और विगर्भ । जिसमे इष्ट देवता का जप एव ध्यान आदि किया जाता है, उसे ज्ञानिजन सगर्भ प्राणायाम कहते है और जिस प्राणायाम मे जप, ध्यान आदि को महत्त्व नही दिया जाता, उसे विगर्भ शब्द से पुकारते है। इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास विधिपूर्वक करना चाहिये । जिस प्राणायाम का अभ्यास करते समय शरीर मे पसीना आने लगे उसे अधम जिसमे कम्प

उत्पन्न हो जाये उसे मध्यम और जिसमे भूमि को त्याग कर पृथ्वी से ऊपर उठने की शक्ति उत्पन्न हो जाये, उसे उत्तम प्राणायाम कहते हैं।

जब तक उत्तम कोटि के प्राणायाम तक मानव न पहुच जाये, तब तक उसे अभ्यास करते रहना चाहिये।

इन्द्रियाणा विचरता विषयेषु निरर्गलम् ॥२१॥

बलादाहरण तेभ्य प्रत्याहारोऽभिधीयते ।२१½॥

प्रत्याहार के लक्षण

इन्द्रियाँ जिस समय स्वच्छन्द रूप से अपने अपने विषयो मे विचरण करती हैं, अर्थात् अपने अपने विषयो को देखना, सुनना, सूघना आदि कार्यों को करती हैं, उस समय उन्हे बलपूर्वक विषयो से हटाने की जो प्रक्रिया है, उसे प्रत्याहार कहते है ॥२१½॥

अङ्गुष्ठगुल्फजानमूरुमूलाधारलिंगनाभिषु ।२२॥

हृद्ग्रीवाकठदेशेषु लम्बिकाया ततो नसि ॥
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशाते यथाविधि ॥२३॥

धारण प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥२३½॥

धारणा का लक्षण

अगुष्ठ, एडी, घुटने, जाँघ, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य भाग (भौंहो के बीच का भाग) और मस्तक इन बारह स्थानो मे प्राणवायु को विधि पूर्वक धारण किए रखने की प्रक्रिया को धारणा कहा जाता है ॥२३½॥

समाहितेन मनसा चैतन्यातरर्वातिना ॥२४॥
आत्मन्यभीष्टदेवाना ध्यान ध्यानमिहोच्यते ॥२४½॥

ध्यान के लक्षण

मन को चेतन आत्मा मे समाहित करके, अर्थात् लगाकर, उसमे अपने अभीष्ट देवता का ध्यान करने की प्रक्रिया को ध्यान कहा जाता है, अर्थात् इस प्रक्रिया मे मन की एकाग्रतापूर्वक अपने इष्टदेव के रूप का पूर्णतया ध्यान किया जाता है ॥२४½॥

समत्वभावना नित्य जीवात्मपरमात्मनो ॥२५॥
समाधिमाहुर्मुनय प्रोक्तमष्टागलक्षणम् ॥२५½॥

समाधि के लक्षण

जिस समय जीवात्मा और परमात्मा मे समत्व भावना उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् दोनो मे एकता का भाव साधक को उत्पन्न होता है, उस प्रक्रिया का नाम समाधि है । इस प्रकार ये अष्टाग योग के लक्षण हैं ॥२६½॥

इदानी कथये तेऽह मत्रयोगमनुत्तमम् ॥२६॥

विश्व शरीरमित्युक्त पचभूतात्मक नग ॥
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥२७॥

तिस्त्र कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाड्यो मता ॥
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्त्रो व्यवस्थिता ॥२८॥

प्राधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ॥
इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी ॥२९॥

शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ॥
दक्षिणे या पिंगलाख्या पु रूपा सूर्यविग्रहा ॥३०॥

सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी ॥
तस्या मध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥३१॥

मध्ये स्वयभूलिग तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
तदूर्ध्वे मायाबीज तु हरात्मा बिंदुनादकम् ॥३२॥

तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा ॥
देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप ॥३३॥

तद्वाह्ये हेमरूपाभ वादिसातचतुर्दलम् ॥
द्रुतहेमसमप्रख्यम् पद्म तत्र विचिंतयेत् ॥३४॥

तत्रदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यम् षड्दल हीरकप्रभम् ।
वादिलातषड्वर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ॥३५॥

मूलमाधारषट्कोण मूलाधार ततो विदु ।
स्वशब्देन पर लिंग स्वाधिष्ठान ततो विदु ॥३६॥

तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूर महाप्रभम् ।
मेघाभ विद्युदाभ च वहुतेजोमय तत ॥३७॥

मणिवद्भिन्न तत्पद्म मणिपद्म तथोच्यते ।
दशभिश्च दलैर्युक्त डादिफाताक्षरान्वितम् ॥३८॥

विष्णुनाऽधिष्ठित पद्म विष्ण्वालोकनकारणम् ।
तदूर्ध्वेनाहत पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥३९॥

कादिठातदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ॥
तन्मध्ये वाणलिंग तु सूर्यायुतसमप्रभम् ॥४०॥

शब्दब्रह्ममय शब्दानाहत तत्र दृश्यते
अनाहताख्य तत्पद्म मुनिभि परिकीर्तितम् ॥४१॥

आनन्दसदन तत्तु पुरुषाधिष्ठित परम् ।
तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्य दल षोडशपंकजम् ॥४२॥

स्वरै षोडशभिर्युक्त धूम्रवर्ण महाप्रभम् ।
विशुद्ध तनुते यस्माज्जीवस्य हसलोकनात् ॥४३॥

विशुद्ध पद्ममाख्यातमाकाशाख्य महाद्भुतम् ।
आज्ञाचक्र तदूर्ध्व तु आत्मनाऽधिष्ठित परम् ॥४४॥

आज्ञासक्रमण तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम् ।
द्विदल हक्षसयुक्त पद्म तत्सुमनोहरम् ॥४५॥

कैलासाख्य तदूर्ध्व तु रोधिनी तु तदूर्ध्वत ।
एव त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥४६॥

सहस्रारयुत बिंदुस्थान तदूर्ध्वमीरितम् ।
इत्येतत्कथित सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ॥४७॥

आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मन ।
गुदमेढ्रातरे शक्तिस्तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ॥४८॥

लिंगभेदक्रमेणैव बिंदुचक्र च प्रापयेत् ।
शभुना ता परा शक्तिमेकीभूता विचितयेत् ॥४९॥

तत्रोत्थितामृत यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम् ।
पाययित्वा तु ता शक्ति मायाख्या योगसिद्धिदाम् ॥५०॥

षट्चक्रदेवतास्तत्र सतर्प्यामृतधारया ॥
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधार तत सुधी ॥५१॥

एवमभ्यस्यमानस्याप्यहन्यहनि निश्चितम् ।
पूर्वोक्ता दूषिता मन्त्रा सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा ॥५२॥

जरामरणदु खाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ।
ये गुणा सति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा ॥५३॥

ते गुणा साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा ।
इत्येव कथित तात वायुधारणमुत्तमम् ॥५४॥

हे हिमालय ! अब आपके समक्ष मैं श्रेष्ठ मन्त्र योग का वर्णन करती हू । इस पचभूतात्मक शरीर को विश्व कहा जाता है । चन्द्र, सूर्य और अग्नि के तेज से युक्त होने पर ईडा, पिगला, सुषुम्ना मे योग साधना के द्वारा जीव ब्रह्म की एकता होती है । इस शरीर मे साढे तीन करोड नाडिया हैं । उनमे दस मुख्य हैं— उन दस मे भी तीन नाडियो को सबसे मुख्य बतलाया गया है। ये मेरुदण्ड मे चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूप होकर रहती हैं। बायी ओर श्वेत वर्ण की चन्द्ररूपिणी नाडी है । यह शक्ति स्वरूपा और अमृतमय शरीर से युक्त है। मेरुदण्ड के दाहिनी ओर पिंगला नाम की नाडी है। वह पुरुष रूपा सूर्य के शरीर वाली, अर्थात सूर्यमूर्ति नाडी है । इनके बीच मे सर्वतेजोमयी अग्नि रूपिणी सुषुम्ना नाम की नाडी है । सुषुम्ना नाडी के मध्य मे विचित्रा नाम की नाडी है, उसमे इच्छा और ज्ञान की क्रियाओ का स्वरूप होता है । करोडो सूर्यो के समान प्रभा से सम्पन्न "स्वयम्भू लिंग" है। इस सुषुम्ना नाडी के ऊपर "ह्रीं" माया बीज है और उसके ऊपर लाल वर्ण वाली शिखा के आकार की कुण्डलिनी "गोल घेरा कृति" है ।

हे हिमालयराज! यह देव्यात्मिका "कुण्डलिनी' मुझ से भिन्न नही है अर्थात् यह स्वरूप मेरा ही है। इसके बाहरी भाग मे स्वर्ण वर्ण की आभा से युक्त कमल का ध्यान करना चाहिये, जिसमे चार दल हो। उनमे व, श ष, स इन चार अक्षरो का ध्यान करना चाहिये। इसे मूलाधार चक्र कहते हैं। इसके ऊपर छ कोणो वाले कमल का ध्यान करें। यह अग्नि के सदृश दलो से युक्त और हीरे के समान चमकदार है। यह व, भ, म, य, र, ल— इन छ अक्षरो से सम्पन्न स्वाधिष्ठान चक्र है। 'स्व शब्द से 'परम लिंग' स्वरूप समझना चाहिये। इसके ऊपर नाभि प्रदेश मे अत्यन्त प्रभा से युक्त मेघ, एव बिजली के समान कान्ति से सम्पन्न मणिपूरक' नामक अत्यन्त तेजोमय चक्र है। मणि के सदृश प्रभा से सम्पन्न होने के कारण इसे मणि पद्म भी कहते है। यह दस दलो

से युक्त और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—इन दस अक्षरो से समन्वित है। यह कमल विष्णु द्वारा अधिष्ठित होने के कारण विष्णु के दर्शन का साध नहै। इसके ऊपर उदीयमान सूर्य की प्रभा से सम्पन्न 'अनाहत' चक्र है। यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ ज झ, ञ, ट, ठ अक्षरो से युक्त हैं। इसके मध्य मे दस हजार सूर्यो के समान प्रभा वाला 'ब ण लिंग' विराजमान है। किसी भी आघात के बिना इसमे शब्द होता रहता है। अत 'शब्द-ब्रह्ममय' इस चक्र को मुनिगण 'अनाहत' कहते हैं। यह चक्र आनद का सदन है, अर्थात् मूलस्थान है और इसमे परम पुरुष अधिष्ठित रहता है। इसके ऊपर विशुद्ध नामक सोलह दलो से युक्त कमल है। यह कमल अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ इन चौदह स्वरो से सम्पन्न है। इसका धुम्र वर्ण है जोकि अत्यन्त प्रभा से युक्त है। इसमे हस स्वरूप परमात्मा के दर्शन से जीव विशुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेता है, इसीलिए इस महान् अद्भूत कमल को विशुद्ध पद्म चक्र एव आकाश चक्र भी कहते हैं। इसके ऊपर परमात्मा का अधिष्ठान स्वरूप आज्ञा चक्र है, जिसमे परमात्मा की आज्ञा का सक्रमण होना है, इसी कारण इसको आज्ञा चक्र कहा जात है। इसके दो दल हैं, और यह ह और क्ष दो अक्षरो से युक्त एव अत्यन्त मनोहर है। इसके ऊपर कैलाश नामक चक्र है। उसके ऊपर रोहिणी नामक चक्र है।

हे सुव्रत हिमालय! आपको इस प्रकार आधार चक्रो का वर्णन सुना दिया है। इनके ऊपर एक 'सहस्त्र चक्र' है, यह बिन्दुमूल परमात्मा का स्थान है। इस कारण इसको शून्य शब्द से भी पुकारा जाता है। इसमे सहस्त्र दल है। इस प्रकार यह सर्वश्रेष्ठ योग मार्ग बतला दिया गया है। अब उसकी विधि सुनिये। पहले पूरक प्राणायाम के द्वारा आधार, अर्थात् अपने इष्ट मे मन लगाये। तदनन्तर गुदा और मेढ़ के बीच मे वायु के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को समेट कर उसे जागृत करे। फिर लिंग भेदन क्रम के अनुसार स्वयभू लिंग' से आरम्भ करके चक्रो द्वारा उस कुण्डलिनी शक्ति को शून्य चक्र, अर्थात् सहस्रारचक्र तक ले जायें। इसके बाद उस पराशक्ति का सहस्रार मे स्थित परमेश्वर शिव के साथ ऐक्य भाव से ध्यान करें। फिर वहा शिव और शक्ति सम्मेलन से पिघने हुए लाक्षा रस के सदृश बढने वाले अमृत को लेकर योगसिद्धि प्रदान करने वाली मायाशक्ति के अमृत का पान करना चाहिये। फिर उस अमृतधारा के

द्वारा षट् (छ) चक्रो मे स्थित देवताओ को परितृप्त करे। फिर उपर्युक्त मार्ग से ही साधक उस कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार चक्र तक वापिस ले आये। इस प्रकार जो साधक प्रतिदिन अभ्यास करते है, उनके लिए सब प्रकार के मत्र सिद्ध हो जाते हैं चाहे वे शिव भगवान् द्वारा दूषित या कीलित भी क्यो न किए गये हो। इसमे कोई भी शका नही करनी चाहिये। इस विधि को अपनाने से साधक बुढापा, मृत्यु आदि के दु खो से निर्मुक्त होकर भव-बन्धन से छुटकारा पा लेता है और मुझ जगज्-जननी मे जो दयालुता आदि सद्गुण हैं, वे सब गुण उस श्रेष्ठ साधक मे उत्पन्न हो जाने हैं, इसमे कुछ भी सन्देह नही। हे तात! अर्थात् हिमालय! पुत्रवात्सल्यता के कारण मैंने इस प्रकार वायु के धारण करने का श्रेष्ठ योग आपको बतला दिया है ॥५४॥

इदानी धारणाख्य तु शृणुष्वावहितो मम।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नदेव्या चेतो निधाय च ॥५५॥

तन्मयो भवति क्षिप्र जीवब्रह्मैक्ययोजनात्।
अथवा समल चेतो यदि क्षिप्र न सिद्ध्यति ॥५६॥

तदाऽवयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत्।
मदीयहस्तपादादावगे तु मधुरे नग ॥५७॥

चित्त सस्थापयेन्मन्त्री स्थान स्थानजयात्पुन।
विशुद्धचित्त सर्वस्मिन्रूपे सस्थापयेन्मन ॥५८॥

यावन्मनो लय याति देव्या सविदि पर्वत।
तावदिष्टममु मन्त्री जपहोमै समभ्यसेत् ॥५९॥

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि स ॥६०॥

द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मससिद्धिकारणम्।
तम परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ॥६१॥

एव मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृत ।
इति योगविधि कृत्स्न साग प्रोक्तो मयाऽधुना ॥
गुरूपदेशनो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभि ।६२॥

हे हिमालय! अब आपको मैं चित्त धारण नामक योग सुनाती हू, इसे सावधानी से सुनिये । दिशा, काल और देश आदि द्वारा अपरिच्छिन्न मेरे देवी स्वरूप मे चित्त स्थित करके तन्मय हो जाने पर मानव को बहुत शीघ्र ही जीव ब्रह्म के एकत्व का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यदि किसी कारणवश चित्त मे मलदोष उत्पन्न होने के कारण शीघ्र सिद्धि प्राप्त न हो तो ऐसी परिस्थिति मे साधक को अवश्य योग का अभ्यास करना चाहिये। हे पर्वतराज! मेरे हस्त, चरण आदि मधुर एव मनोहर अगो मे चित्त को स्थिर करके एक एक अग पर पूर्ण रूप से मन्त्रजाप द्वारा अभ्यास करे और फिर विशुद्ध चित्त से मेरे समग्र रूप को मन मे स्थित करके उस रूप का ध्यान करे। हे हिमालय! जब तक मेरे स्वरूप मे मन का लय, अर्थात् मन की लीनता न हो जाये, तब तक इष्ट मन्त्र का जप और हवन आदि प्राणि वर्ग को करते रहना चाहिये। मन्त्राभ्यास और योग के द्वारा ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान हो जाता है। योग के बिना मन्त्र की सिद्धि नहीं होती और मन्त्र के बिना योग सिद्ध नही होता। मन्त्र और योग दोनो का समन्वयात्मक अभ्यास ही ब्रह्म ज्ञान मे सहायक होता है। जैसे- जिसके घर मे अधेरा छाया हुआ हो, उसे घट दिखाई नही देता परन्तु जब वह दीपक जला लेता है तब उसे वह दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार माया से आवृत जीवात्मा भी मन्त्र रूपी दीपक के द्वारा दृष्टिगोचर होने लगती है। हे पर्वतराज! इस प्रकार मैंने स्वय समस्त अगो सहित यह योग की विधि आपको बतला दी है। इसका आप अनुसरण करे। यह विद्या इतनी कठिन है कि अनुभवी गुरु के उपदेश से ही जानी जा सकती है। करोडो शास्त्रो के अध्ययन मात्र से इस विद्या का ज्ञान मानव को नही हो सकता, अर्थात् योग सिद्ध गुरु की अध्यक्षता मे रह कर मन्त्र एव योग आदि के अभ्यास को करते रहना चाहिये। ऐसा करने से अवश्य सिद्धि प्राप्त हो जाती है।६२॥

इति श्रीदेवी-भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
देवीगीताशास्त्रे पचमोऽध्याय

षष्ठोऽध्याय

श्री देव्युवाच—

इत्यादियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मा ब्रह्मरूपिणीम् ॥
भक्त्या निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थित ॥१॥

आवि सन्निहित गुहाचरम् नाम महत्पदम् ।
अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणमिषच्च यत् ॥२॥

एतज्जानथ सदसद्वरेण्य पर विज्ञानाद्यद्वरिष्ठ प्रजानाम् ।
यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिल्लोका निहिता लोकिनश्च ॥३॥

यदेतदक्षर ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मन ।
तदेतत्सत्यममृत तद्वेद्धव्य सौम्य विद्धि ॥४॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषद महास्त्र शर ह्य ुपासानिशित सधयीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्य तदेवाक्षरसौम्य विद्धि ॥५॥

प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत् ॥६॥

श्री देवी जी ने कहा— हे पर्वतराज ! इस प्रकार योग युक्त होकर, अर्थात् योग ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उसका अनुभव करने पर मुझ ब्रह्म स्वरूपा देवी का ज्ञान करना चाहिये । यह ध्यान आसन पर विधि पूर्वक वैठकर अहैतुकी, अर्थात् किसी लक्ष्य के विना की गई, भक्ति द्वारा सम्पन्न होना चाहिये । इस समय ब्रह्म का स्वरूप आपको वतलाया जा रहा है, जो प्रकाशमय सवके अत्यन्त समीप स्थित, हृदय

रूपिणी गुहा मे स्थित होने के कारण 'गुहाचर' नाम से प्रसिद्ध और महान् पद वाची है अर्थात् वह ब्रह्म ही परम प्राप्यपद है। जितने भी चेष्टा करने वाले, श्वास लेने वाले आँखो को खोलने और मूदने वाले जीव हैं, वे सब उस ब्रह्म मे ही स्थित है। सत्, असत् सब वह ही सब के द्वारा ग्रहण करने योग्य और सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। वह समस्त प्रजा के ज्ञान से दूर है, अर्थात् किसी की बुद्धि मे आने वाला नही है। इस प्रकार इस ब्रह्म को आप समझे। अब आप उस अक्षर ब्रह्म का रूप इस इस प्रकार समझें कि वह परम प्रकाशमय, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। इसे ही अक्षर ब्रह्म कहते हैं। यही सबका प्राण है। इसे ही सबकी वाणी और सबका मन माना गया है। यह परम सत्य, अमृतमय अविनाशी तत्त्व है। हे सौम्य हिमालय ! उस भेदन योग्य लक्ष्य का आप भेदन करके मन को एकाग्र कर उसमे तन्मय हो जाओ। हे सौम्य ! उपनिषदो मे वर्णित महान् अस्त्र रूप धनुष लेकर उस पर उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढाओ। फिर भावनाओ से युक्त चित्त द्वारा उस बाण को चढाओ। फिर भावनाओ से युक्त चित्त द्वारा उस बाण को खीच कर उस अक्षर रूप ब्रह्म को ही लक्ष्य बनाकर उसका भेदन करो। प्रणव (ओम्) धनुष है, जीवात्मा बाण है और ब्रह्म को उसका लक्ष्य कहा जाता है। प्रमाद रहित तथा अत्यन्त तत्परता से साधन सम्पन्न होकर उसका भेदन करना चाहिये और बाण के समान उसमे तन्मय हो जाना चाहिये ॥६॥

यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चान्तरिक्षमोत मन सह प्राणैश्च सर्वै ॥
तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुचथा अमृतस्यैष सेतु ॥७॥

अरा इव रथनाभौ सहता यत्र नाड्य ॥
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमान ॥८॥

ओमित्येव ध्यायथात्मान स्वस्ति व पाराय तमस परस्तात् ॥
दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा सप्रतिष्ठित ॥९॥

मनोमय प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदय सन्निधाय ॥
तद्विज्ञानेन परिपश्यति धीरा आनन्दरूपममृत यद्विभाति ॥१०॥

भिद्यते हृदयग्रथिश्छिद्यते सर्वसशया ॥
क्षियते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥११॥

हिरण्मये परे कोशे विराज ब्रह्म निष्कलम् ॥
तच्छुभ्र ज्योतिषा ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदु ॥१२॥

न तत्र सूर्यो भाति न चद्रतारक नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्नि ॥
तमेव भातमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिद विभाति ॥१३॥

ब्रह्मैवेदममृत पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥
अधश्चोर्ध्व च प्रसृत ब्रह्मैवेद विश्व वरिष्ठम् ॥१४॥

एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तम ॥
ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा न शोचति न काक्षति ॥१५॥

जिस ब्रह्म मे स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश सम्पूर्ण प्राणो सहित इन्द्रिय युक्त मन बुद्धि रूप अन्त करण ओत-प्रोत है, उस एकमात्र परमात्मा को ही सर्वस्व समझो। यही अमृत रूप परमात्मा के पास पहुँचाने वाला सेतु है। ससार समुद्र से पार होकर अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने का यही सुगम साधन है। जिस प्रकार रथ के चक्र मे अरे लगे हुए होते हैं, उसी प्रकार हृदय मे भी शरीर की सम्पूर्ण नाडिया एकत्रित हैं। उस हृदय मे ही नाना प्रकार के रूपो मे प्रकट होने वाला परब्रह्म सचरण करता है और अन्तर्यामी रूप से सदा वर्तमान रहता है।

इस आत्मा का 'ओम्' शब्द के जप के साथ ध्यान करो। इस प्रकार करने से अज्ञानमय अन्धकार से जो सर्वदा दूर रहता है और ससार रूपी समुद्र से जो परे है, उस ब्रह्म को मानव प्राप्त कर लेता है। वह ब्रह्म सदा जागने वाला और सब ओर से सब कुछ जानने वाला है। जिसकी जगत् मे इस प्रकार महिमा है, वह सब का आत्मा ब्रह्म, ब्रह्म लोक स्वरूप, दिव्य आकाश मे स्थित है। यह मनोमय है और सबके प्राण और शरीर का नेता है। सब प्राणियो के हृदय का आश्रयभूत होकर वह अन्न प्रधान स्थूल शरीर मे स्थित है। वह आनन्द स्वरूप, अमृतमय, अविनाशी ब्रह्म सर्वत्र प्रकाशमान है। उसका साक्षात्कार धैर्यशाली व्यक्ति विज्ञान,

तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धान्तो ब्रह्मदाता गुरु पर ॥
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शकर ॥२६॥

उपर्युक्त ब्रह्म विद्या का ज्ञान, भक्ति सम्पन्न एव शीलयुक्त जेष्ठ पुत्र को बतलाना चाहिये और भक्ति सम्पन्न शीलवान् शिष्य को भी यह बतलाया जा सकता है। इन गुणो से हीन अन्य किसी व्यक्ति को भी इस ब्रह्म विद्या का उपदेश नही देना चाहिये, अर्थात् भक्ति सम्पन्न एव उच्च कोटि के दयालु स्वभाव आदि के ही व्यक्ति इसके अधिकारी हैं। जिस व्यक्ति की अपने इष्ट देव मे जैसे परम भक्ति होती है, उसी प्रकार उस व्यक्ति को अपनी पराभक्ति अन्य देवता एव गुरु मे भी रखनी चाहिये। ऐसे महात्माजनो के लिए ही इस श्रेष्ठ ब्रह्म विद्या के उपदेश श्रेष्ठ व्यक्ति करते हैं। जिसके द्वारा इस ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया जाता है, वह परमेश्वर स्वरूप ही होता है अर्थात्, ब्रह्म विद्या का उपदेश देने वाला गुरु वही हो सकता है, जो मुझ शक्तिस्वरूपा भगवती के परम अ श से समन्वित है।

जिस प्रकार मैं विश्वजननी होने के नाते ससार मे स्थित प्रत्येक अच्छे या बुरे व्यक्ति का शुभ ही सोचती हूँ उसी प्रकार विद्या का उपदेश देने वाला गुरु भी सब के लिए शुभ कामनाओ का आधारभूत होता है। इस विद्या का बदला कोई व्यक्ति चुका नही सकता, इसलिए शिष्य सदा गुरु का ऋणी रहता है, क्योंकि ब्रह्म की प्राप्ति करा देने वाला गुरु जन्मदाता, अर्थात् माता-पिता से भी अधिक पूजनीय होता है, माता-पिता से प्राप्त जीवन नष्ट हो सकता है परन्तु ब्रह्म विद्या का ज्ञान रूप जन्म कभी नष्ट नही होता। अत हे पर्वतराज! 'तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्' इस श्रुति रूप शास्त्र सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मदाता, परम गुरु से कभी द्रोह नही करना चाहिये। ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है। यदि शिव भगवान् रुष्ट हो जाये तो उसे ब्रह्मज्ञानी गुरु बचा सकते हैं। परन्तु गुरु के रुष्ट होने पर भगवान् शिव नही बचा सकते ॥२६॥

तस्मात्सर्वप्रयत्येन श्रीगुरु तोषयेन्नग ॥
कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ॥२७॥

अन्यथा तु कृतघ्न स्यात् कृतघ्ने नास्ति निष्कृति ॥
इन्द्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया ॥२८॥

अश्विभ्या कथने तस्य शरश्छिन्न च वज्रिणा ।।
वज्रेण तच्छिरो नष्ट दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ ।।२९।।

पुन सयोजित नून ताभ्या मुनिशिरस्तदा ।।
इति सकटसपाद्या ब्रह्मविद्या नराधिप ।।
लब्धा येन स धन्य स्यात्कृतकृत्यश्च भूवर ।।३०।।

हे पर्वतराज ! तन, मन, वचन से सब प्रकार का प्रयत्न करते हुए गुरू कोसन्तुष्ट करना चाहिये। ऐसा न होने पर उसका उद्धार कही भी नही हो सकता। इस ब्रह्म विद्या का ज्ञान गुरु के आदेशानुसार जनता की भलाई के लिए ही होना चाहिये। ऐसा न होने पर हानि की सम्भावना है। जैसे प्राचीनकाल मे इन्द्र से अथर्वण मुनि ने ब्रह्म विद्या के उपदेश की प्रार्थना की। उस समय इन्द्र ने ब्रह्म विद्या का उपदेश देने से पूर्व उससे यह निश्चय करवाया कि आपने इस ब्रह्म विद्या को किसी अन्य व्यक्ति को, जो इसका अधिकारी न हो, नही बतलाना । तब मैं यह यह ब्रह्म विद्या आपको सिखाता हू । अगर आप ऐसा नही करेंगे तो आपका सिर काट दिया जायेगा। आपको ब्रह्म विद्या का ज्ञान देता हू। मुनि ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा को स्वीकृत किया।

देवताओ के वैद्य अश्विनी कुमारो ने इस ब्रह्म विद्या की याचना उस मुनि से की। तब मुनि ने उन्हें उपदेश देने से इन्कार कर दिया और कहा, यदि यह ब्रह्म विद्या आपको सिखादी गई तो आप सब रोगियो को शीघ्र ही रोग से निर्मुक्त कर दिया करेंगे । इसलिये मैं आपको यह विद्या नही बतलाऊगा । इसके अतिरिक्त जिस समय मेरे गुरु इन्द्र ने इस विद्या का ज्ञान मुझे दिया उस समय यह भी परामर्श किया था कि यह विद्या आपने आगे किसी को नही बतलानी । नही तो आपका सिर काट दिया जायेगा। तब अश्विनी कुमारो ने कहा कि हम देवताओ के उच्चकोटि के वैद्य हैं। यदि इन्द्र आपका सिर काट देगा तो हम जोड देंगे। इस शर्त से मुनि ने अपने गुरु की आज्ञा का पालन न करते हुए ब्रह्म विद्या का उपदेश अश्विनी कुमारो को दे दिया और इन्द्र ने उसका सिर काट दिया । इन्द्र से कटा हुआ

सिर देख कर अश्विनी कुमारो ने तुरन्त ही उसे जोड कर मुनि को जीवित कर दिया। इस प्रकार ब्रह्म विद्या प्राप्ति मे नाना प्रकार के सकट उत्पन्न होते हैं। हे राजन् ! जिसने इसे प्राप्त कर लिया, वही मनुष्य धन्य एव कृत-कृत्य है ॥३०॥

इति श्रीदेवी-भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत देवी गीता शास्त्रे षष्ठोऽध्याय॰

सप्तमोऽध्यायः

हिमालय उवाच —

स्वीया भक्ति वदस्वाव येन ज्ञान सुखेन हि ॥
जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिण ॥१॥

श्री देव्युवाच —

मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप ॥
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम ॥२॥

त्रयाणामप्यय योग्य कर्तु शक्योऽस्तिसर्वथा ॥
सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडिनात् ॥३॥

गुणभेदान्मनुष्याणा सा भक्तिस्त्रिविधा मता ॥
परपीडा समुद्दिश्य दभ कृत्वा पुर सरम् ॥४॥

मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी ॥
परपीडारहित स्वकल्याणार्थमेव च ॥५॥

नित्य सकामो हृदय यशोऽर्थी भोगलोलुप ॥
तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तित ॥६॥

भेदबुद्ध्या तु मा स्वस्मादन्या जानाति पामर ॥
तस्य भक्ति समाख्याता नगाधिप तु राजसी ॥७॥

परमेशार्पण कर्म पापसक्षालनाय च ॥
वेदोक्तत्वादवश्य तत्कर्तव्य तु मया ऽनिशम् ॥८॥

इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रित ॥
करोति प्रियते कर्म भक्ति सा नग सात्त्विकी ॥६॥
परभक्ते प्रापिकेय भेदबुद्ध्य वलबनात्॥ १०½॥

(भक्ति के भेद एव ज्ञान प्राप्ति की महिमा का वर्णन इस अध्याय मे है।)

हिमालय ने कहा,— हे माता ! आप अपनी वह भक्ति बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा मुझ स्वार्थ परायण साधारण मनुष्य के हृदय मे भी सुगम विधि से ज्ञान का उदय हो जाये। श्री देवी जी ने उत्तर दिया कि हे राजेन्द्र ! मोक्ष प्राप्ति के लिये विख्यात तीन मार्ग हैं— कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। इन तीनो मे से भक्तियोग सम्यक् प्रकार से सम्पन्न किया जा सकता है, इसके करने मे किसी प्रकार का कष्ट शरीर एव चित्त को नही पहुँचता, क्योंकि यह सुगम एव मन के अनुकूल मार्ग हैं।

मनुष्यो के गुण-भेद के अनुसार यह भक्ति भी तीन प्रकार की, अर्थात् राजसी, तामसी एव सात्त्विकी मानी जाती है। जो दूसरो को दु खी करने के लिए दम्भ पूर्वक डाह एव क्रोध से भरकर भक्ति करता है वह भक्ति तामसी कहलाती है। हे गिरिराज हिमालय ! जो व्यक्ति दूसरे को कष्ट न पहुँचाकर अपने कल्याण के लिए सदा कामनाओ से युक्त होकर यश, और भोग की लालसाओ से लालायित होकर अपने किए हुए कर्म के फल पाने की इच्छा से मेरी श्रद्धापूर्वक उपासना करता है, उस मन्द बुद्धि वाले व्यक्ति द्वारा की गई जो भक्ति है, वह राजसी कहलाती है। जो व्यक्ति अपना कर्म परमात्मा को अर्पण कर देता है और पाप को धोने के लिए कर्म करता है, वेद की आज्ञा के अनुसार सदा शुभ कार्यो मे लगा रहता है, या इस भावना को लेकर मन निश्चित करके अभेद बुद्धि के द्वारा मेरी प्रशसा के लिए उपासना करता है, उस व्यक्ति द्वारा की गई भक्ति सात्त्विकी होती है।

सेव्य और सेवक की वेद-बुद्धि से की गई सत्विकी भक्ति मेरी प्राप्ति मे अर्थात् मुझे प्राप्त करने मे सहायक होती है। सतोगुण प्रधान उपासना से ही मनुष्य सब कामनाओ का भोग करता हुआ मेरे पद को, अर्थात् देवी रूप को प्राप्त हो जाता है। वह व्यक्ति दैवीय सम्पदाओ

से युक्त होकर मेरे गुणो से समलकृत होता हुआ जनता की भलाई का लक्ष्य रखकर अन्त मे मेरे परमधाम को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् उस व्यक्ति का मोक्ष हो जाता है। राजसी और तामसी भक्ति कामनाओ की पूर्ति कराने मे सफल होती हुई मोक्ष पद की प्राप्ति मे सहायक नहीं होती ॥१०॥

अधुना परभक्ति तु प्रोच्यमाना निबोध मे ॥
मद्गुणश्रवण नित्य मम नामानुकीर्तनम् ॥११॥

कल्याणगुणरत्नानामाकराया मयि स्थिरम् ॥
चेतसा वर्तन चैव तैलधारासम सदा ॥१२॥

हेतुस्तु तत्र को वापि न कदाचिद्भवेदपि ॥
सामीप्यसर्ष्टिसायुज्यसालोक्याना न चैषणा ॥१३॥

मत्सेवातोऽधिक किंचिन्नैव जानाति कर्हिचित् ॥
सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्ष न वाछति ॥१४॥

परानुरक्त्या मामेव चितयेद् यो ह्यतद्रित ॥
स्वाभेदेनैव मा नित्य जानाति न विभेदत ॥१५॥

मद्रूपत्वेन जीवाना चितन कुरुते तु य ॥
यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ॥१६॥

चैतन्यस्य समानत्वान्न भेद कुरुते तु य ॥
सवत्र वर्तमानाना सर्वरूपा च सर्वदा ॥१७॥

नमते यजते चैवाप्याचाडालातमीश्वर ॥
न कुत्रापि द्रोहबुद्धि कुरुते भेदवर्जनात् ॥१८॥

हे हिमालय ! अब मैं अपनी उच्चकोटि की भक्ति का वर्णन करती हू। इसे आप सावधानी से सुने। प्रत्येक व्यक्ति को मेरे गुणो का श्रवण एव नाम कीर्तन करते रहना चाहिये क्योकि, मैं कल्याण एव गुणमय दर्शनो का भण्डार हूँ। मानव को सदा मेरे मे अपना चित्त अटूट रूप से, तेल धारा की भान्ति, लगाए रखना चाहिये। उसके मन मे कभी हेतु अथवा

अहेतु की कल्पना भी नही होनी चाहिये। सामीप्य, सायुज्य, सालोक्य, और सार्ष्टि इन चार प्रकार की मुक्तियो की एषणाओ का कभी मन मे उदय नही होना चाहिये।

मानव को मेरी सेवा के अतिरिक्त किसी कार्य को श्रेष्ठ नही समझना चाहिये। मानव मे इतनी अटूटभक्ति होनी चाहिये, जिससे सेव्य और सेवक भाव की इतनी गहरी छाप हो जाये कि वह मोक्ष पद की प्राप्ति को भी त्याग दे, अर्थात् मोक्ष की भी उसे इच्छा नही होनी चाहिये। अटूट श्रद्धा से उसे सावधानी पूर्वक मेरा ही चिन्तन करते रहना चाहिये।

मुझमे और अपने आप मे निरन्तर अभेद बुद्धि रखनी चाहिये, अर्थात् भक्तिभाव मे इतना लीन हो जाये कि दोनो मे किसी प्रकार का अन्तर न समझे। सभी जीव मेरे रूप है। ऐसी धारणा सदा बनाने के कारण अपने और पराये मे वह सदा एक समान प्रीति रखे। चैतन्य, परब्रह्म समान रूप से सर्वत्र विराजमान है। यह समझता हुआ भक्त अपने और पराये मे भेद न समझे। विश्व के सम्पूर्ण रूपो मे सर्वत्र सदा मुझे विराजमान समझते हुए प्रणाम एव भजन करना चाहिये। हे पर्वतराज हिमालय ! इस विश्व मे स्थित चाण्डाल तक भी विरामान परमेश्वरी भगवती का ही रूप हैं, ऐसी भावना से उसे सदा ओत-प्रोत रहना चाहिये। भेद भाव को त्याग कर कही भी उसे द्वेष भाव नही रखना चाहिये ॥१८॥

मत्स्थानदर्शनश्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा ॥
मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मन्त्रतन्त्रादिषु प्रभो ॥१९॥

मयि प्रेमाकुलमती रोमाचिततनु सदा ॥
प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्ष कठगद्गदनि स्वन ॥२०॥

अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप ॥
मामीश्वरी जगद्योनि सर्वकारणकारणाम् ॥२१॥

व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ॥
नित्य य कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जित ॥२२॥

मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सवकृतिस्तथा ॥
जायते यस्य नियत स्वभावादेव भूधर ॥२३॥

उच्चैर्गायश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति ॥
अहकारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जित ॥२४॥

प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ॥
न मे चिंतास्ति तत्रापि देहसरक्षणादिषु ॥२५॥

इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परा भक्तिस्तु सा स्मृता ॥
यस्यां देव्यतिरिक्त तु न किंचिदपि भाव्यते ॥२६॥

इत्थ जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वत ॥
तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ॥२७॥

भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञान प्रकीर्तितम् ॥
वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभय यत ॥२८॥

भक्तौ कृताया यस्यापि प्रारब्धवशतो नग ॥
न जायते मम ज्ञान मणिद्वीप स गच्छति ॥२९॥

तत्र गत्वाऽखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति ॥
तदन्ते मम चिद्रूपज्ञान सम्यग्भवेन्नग ॥३०॥

तेन मुक्त सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा ॥
इहैव यस्य ज्ञान स्याद्‌धृद्‌गतप्रत्यगात्मन ॥३१॥

मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजति न ॥
ब्रह्मैव सस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद य ॥३२॥

हे राजन् । मेरे ध्यान के दर्शन करने, मेरे भक्त से मिलने और मेरे शास्त्र के सुनने तथा मेरे मन्त्र-तन्त्र आदि मे पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये । हे पर्वतराज ! मेरे प्रति प्रेम के आसू बहाते हुए कण्ठ की गद्‌गद ध्वनि से युक्त होता हुआ अनन्य भाव से मेरी पूजा करे। हे पर्वतराज ! मैं जगत् को उत्पन्न करने वाली परमेश्वरी हू । मैं सम्पूर्ण कारणो का मूल कारण हूँ । मेरे नित्य और नैमित्तिक सब प्रकार के व्रत दिव्य है। धन के

व्यय, अर्थात् खर्च मे भक्त को कजूसी न करते हुए भक्ति द्वारा सदा मेरे व्रतो का पालन करना चाहिये ।

हे हिमालय ! मेरे उत्सव देखने की अभिलाषा करना और उत्सव मनाना भक्त का स्वभाव बन जाना चाहिये । उच्च स्वर से मेरे नामो का कीर्तन करते हुए मेरी भक्ति से परायण व्यक्तियो को नृत्य करने का अधिकार है । उस समय उन्हे मन मे अहकार नही होना चाहिये। उसे नृत्य भी शारीरिक अभिमान छोडकर करना चाहिये। उस समय उसे इस प्रकार मन मे विचारना चाहिये कि उसने जैसा कर्म किया था वैसा ही प्रारब्ध के अनुसार हो रहा है। उस समय उसे अपनी देह की रक्षा के निमित्त चिन्ता नही होनी चाहिये। इस प्रकार के भावो से युक्त होकर जो मेरी भक्ति की जाती है, उसे पराभक्ति कहते है। इसमे देवी के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु के प्रति भावना ही नही होती, अर्थात् सारे जगत् की प्रत्येक वस्तु को देवीमय ही जिस समय समझा जाता हैं, तब वह पराभक्ति होती है।

हे हिमालय ! इस प्रकार की पराभक्ति जिस व्यक्ति के या भक्त के हृदय मे उत्पन्न हो जाती है, उसी समय वह मेरे चिन्मय रूप मे विलीन होने का अधिकारी हो जाता है । भक्ति की जो पराकाष्टा है, उसे ही ज्ञान कहते हैं, अर्थात् उच्चकोटि की पराभक्ति के अनन्तर ही मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है । वैराग्य की चरम सीमा ही ज्ञान है, क्योकि ज्ञान प्राप्त हो जाने पराभक्ति और वैराग्य दोनो सिद्ध हो जाते हैं ।

हे हिमालय ! यदि भक्ति करने पर भी मेरे किसी भक्त को ज्ञान प्राप्त न हो तो वह मेरे दिव्य मणि द्वीप मे जाता है। वहा जाकर नाना प्रकार के भोगो को भोगता हुआ सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करता है। हे गिरिराज ! उसे अन्त मे वहा पर ही मेरे रूप का सम्यक् प्रकार से ज्ञान प्राप्त हो जाता है । उसी ज्ञान के प्रभाव से वह सदा के लिए मुक्त हो जाता हैं । ज्ञान मुक्ति का विशेष साधन है। इसमे कुछ भी सन्देह नही। सभी मेरे रूप हैं और मैं सबमे विराजमान हू। मेरे इस रहस्य को जो समझता है उसकी मृत्यु साधारण व्यक्तियो की भान्ति नही होती, अर्थात् प्राण भी उसके नियन्त्रण मे होकर उसे

जव तक चाहे जीवित रख सकते हैं। जो सवमे ब्रह्म का ही ज्ञान रखता है, वह ब्रह्म अर्थात् मुझ भगवती का चिन्तन करता-करता स्वय भी ब्रह्म रूप, अर्थात् भगवतीमय ही हो जाता है ॥ ३२ ॥

कण्ठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम् ॥
ज्ञानादज्ञाननामेन लब्धमेव हि लभ्यते ॥ ३३ ॥

विदिताऽविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम ॥
यथादर्शे तथऽऽत्मनि यथा जले तथा पितृलोके ॥ ३४ ॥

छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि ॥
मम लोके भवेज्ज्ञान द्वैतभावविवर्जितम् ॥ ३५ ॥

यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत् ॥
ब्रह्मलोके वसेन्नित्य यावत्कल्प तत परम् ॥ ३६ ॥

शुचीना श्रीमता गेहे भवेत्तस्य जनि पुन ॥
करोति साधन पश्चात्ततो ज्ञान हि जायते ॥ ३७ ॥

अनेकजन्मभी राजञ्ज्ञान स्यान्नैकजन्मना ॥
तत. सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थ यत्नमाश्रयेत् ॥ ३८ ॥

नोचेन्महान्विनाश स्याज्जन्मैतद्दुर्लभ पुन ॥
तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा ॥ ३९ ॥

शमादिषट्कसपत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च ॥
तथोत्तमगुरुप्राप्ति सर्वमेवात्र दुर्लभम ॥ ४० ॥

तथेंद्रियाणा पटुता सस्कृतत्व तनोस्तथा ॥
अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते तत ॥ ४१ ॥

साधने सफलेऽप्येव जायमानेऽपि यो नर ॥
ज्ञानार्थ नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ४२ ॥

तस्माद्राजन्यथाशक्त्या ज्ञानाथ यत्नमाश्रयेत् ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४३ ॥

घृतमिव पयसि निगूढ भूते भूते च वसति विज्ञानम् ॥
सतत मथयितव्य मनसा मथानभूतेन ॥ ४४

ज्ञान लब्ध्वा कृतार्थं स्यादिति वेदातडिंडिम ॥
सर्वमुक्त समासेन किं भूय श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥

जिस प्रकार गले मे स्थित सोने का हार भ्रम के कारण ऐसे प्रतीत होता है कि वह खोया गया, अर्थात् अज्ञान के कारण से कण्ठ मे होते हुए भी उसका ज्ञान नही होता। फिर जिस समय ज्ञान के कारण, अर्थात् बुद्धि ठीक हो जाने के कारण, अज्ञान का नाश हो जाता है, फिर वह हार गले मे ही मिल जाता है। यहा पर हार तो पहले ही गले मे विराजमान था, परन्तु भ्रम के कारण वह प्रतीत नही होता था। इसी प्रकार हे पर्वतराज! मैं भी सर्व-स्वरूपा हू। अज्ञान से ही मेरे भीतर भिन्नता की प्रतीति मानव को होती है।

मेरे चित्त रूपी शरीर मे घट आदि कार्य माया रूप से अभिन्न हैं। जैसे—दर्पण मे परछाई पडती है, वैसे ही इस शरीर मे आत्मा की परछाई का अनुभव होता है। जिस तरह जल मे परछाई पहले से स्पष्ट दिखती है, वैसे ही पितृ लोक के विषय मे भी स्पष्ट अनुभव होता है। जैसे धूप और छाया का भेद स्पष्ट दिखाई देता है, वैसे ही मणि द्वीप मे द्वैत-शून्य ज्ञान प्राप्त होता हे। जिसके हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया परन्तु उसके हृदय मे ज्ञान का पूर्ण प्रकार से उदय न हो सका, ऐसी अवस्था मे उसकी मृत्यु हो जाने पर वह ब्रह्म लोक मे रहने के अनन्तर फिर पवित्रात्मा, धन-धान्य सम्पन्न व्यक्तियो के घर मे जन्म लेता है। तत्पश्चात् साधना के द्वारा वह ज्ञानप्राप्त कर लेता है।

हे राजन्! अनेक जन्मो के श्रेष्ठ प्रयत्नो द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है। एक जन्म के प्रयत्न द्वारा ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती। अत ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त सब प्रकार के प्रयत्नो को करते रहना चाहिये। ऐसा न होने पर, अर्थात् प्रयत्न मे शिथिलता रहने पर महान् हानि होती है

और यह जन्म फिर प्राप्त होना दुर्लभ है। यदि यह मनुष्य जन्म प्राप्त भी हो जाये, तव वर्णो मे श्रेष्ठवर्ण ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होना और वहा पर भी वेदो का जानने वाला होना, अत्यन्त दुर्लभ है । इसके साथ-साथ शम, दम तितीक्षा आदि छ सम्पत्तिया योग सिद्धि, और उत्तम गुरु का प्राप्त होना ये उससे भी ज्यादा दुर्लभ हैं । इसके साथ साथ इन्द्रियो मे कार्य करने की शक्ति का सदा बने रहना और शरीर मे पवित्रता तथा धर्म का बने रहना यह अत्यन्त कठिन है।

जब अनेक जन्मो के पुण्य सहायक होते हैं, तव मानव के मन मे मुक्त होने की इच्छा उत्पन्न होती है। जो व्यक्ति इस प्रकार के उपर्युक्त साधनो के सम्पन्न होने पर भी ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नही करता, उसका जन्म लेना व्यर्थ है।

हे राजन्! इसलिए यथाशक्ति ज्ञान प्राप्ति के लिए मानव को सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। ज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर चलते समय एक एक पद पर उस व्यक्ति को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । जिस प्रकार दूध मे घी छिपा रहता है, उसी प्रकार प्राणी मे भी विशेष प्रकार का ज्ञान सदा विराजमान रहता है। उसकी प्राप्ति के लिए जिस प्रकार हमे दूध से घी निकालने मे नाना प्रकार की गतिविधियो का सहारा लेकर घी मिल जाता है, उसी प्रकार मानव को भी सदा ज्ञान प्राप्ति के निमित्त नाना प्रकार की गतिविधियो को अपनाना चाहिये। इसलिए मन रूपी मथानी से सदा ज्ञान प्राप्ति के निमित्त उद्यत होकर उसे प्राप्त करना चाहिये, क्योकि वेदान्त आदि शास्त्रो ने डके की चोट से घोपणा करदी है कि ज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही मानव कृतार्थ हो जाता है। हे हिमालय! इस प्रकार मैंने सब विषयो का वर्णन आपको सक्षेप मे कर दिया है, अव आगे क्या सुनना चाहते हो? ॥४५॥

इति श्रीदेवी–भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तंगत
गीता शास्त्रे सप्तमोऽध्याय

अष्टमोऽध्यायः

हिमालय उवाच—

कानि स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले ॥
मख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च ॥१॥

व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि ॥
तत्सर्वं वद मे मात कृतकृत्यो यतो नर ॥२॥

श्री देव्युवाच—

सर्वं दृश्य मम स्थान सर्वे काला व्रतात्मका ॥
उत्सवा॰ सर्वकालेषु यतो ऽहं सर्वरूपिणी ॥३॥

तथापि भक्तवात्सल्यार्त्किचित्किचिदथोच्यते ॥
शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराज वचो मम ॥४॥

कोला पुर महास्थान यत्र लक्ष्मी सदा स्थिता ॥
मातु पुर द्वितीय च रेणुकाधिष्ठित परम् ॥५॥

तुलजापुर तृतीय स्यात्सप्तशृङ्ग तथैव च ॥
हिंगुलाया महास्थान ज्वालामुख्यास्तथैव च ॥६॥

शाकभर्या पर स्थान भ्रामर्या स्थानमुत्तमम् ॥
श्रीरक्तदन्तिकास्थान दुर्गास्थान तथैव च ॥ ७ ॥

विंध्याचलनिवासिन्या स्थान सर्वोत्तमोत्तमम् ॥
अन्नपूर्णामहास्थान काचीपुरमनुत्तमम् ॥ ८ ॥

भीमा देव्या महास्थान विमला स्थान मेव च ।
श्री चन्द्रला महास्थान कौशिकी स्थान मेव च ॥९॥

नीलाम्बाया पर स्थान नीलपर्वत मस्तके ।
जाम्बूनदेश्वरी स्थान तथा श्रीनगर शुभम ॥१०॥

गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम् ॥
मीनाक्ष्या परमं स्थानं यच्च प्रोक्तं चिदम्बरे ॥ ११ ॥

वेदारण्यं महास्थानं सुन्दर्या समधिष्ठितम् ॥
एकाम्बरं महास्थानं पराशक्त्या प्रतिष्ठितम् ॥ १२ ॥

मदालसा परं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च ॥
तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ॥ १३ ॥

वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् ॥
श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम् ॥ १४ ॥

श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥
भूमण्डले क्षेत्ररत्नं महामायाऽधिवासितम् ॥ १५ ॥

नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले ॥
प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला ॥ १६ ॥

तत्रत्या देवताः सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः ॥
पर्वतेषु वसत्येव महत्यो देवता अपि ॥ १७ ॥

तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः ॥
नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात् ॥ १८ ॥

गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम् ॥
अमरेशे चण्डिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी ॥ १९ ॥

नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिंगधारिणी ॥
पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा ॥ २० ॥

चण्डमुण्डी महास्थाने दण्डिनी परमेश्वरी ॥
भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी ॥ २१ ॥

चन्द्रिका तु हरिश चद्रे श्रीगिरौ शाकरी स्मृता ॥
जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे ॥ २२ ॥

शाकरी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे ॥
केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी ॥ २३ ॥

भैरवाख्ये भैरवी सा गयाया मगला स्मृता ॥
स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायभुव्यपि नाकुले ॥ २४ ॥

कनखले भवेदुग्रा विश्वेशी विमलेश्वरे ॥
अट्टहासे महानन्दा महेन्द्रे तु महान्तका ॥ २५ ॥

भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुन ॥
भवानी शाकरी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके ॥ २६ ॥

अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये ॥
गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भद्रकर्णके ॥ २७ ॥

उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसज्ञके ॥
कमलालये तु कमला प्रचण्डा छगलडके ॥ २८ ।

कुरण्डले त्रिसध्या स्यान्माकोटे मुकुटेश्वरी ॥
मडलेशे शाडकी स्यात्काली कालजरे पुन ॥ २९ ॥

शकुकर्णे ध्वनि प्रोक्ता स्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे ॥
ज्ञानिना हृदयाभोजे हृल्लेखा परमेश्वरी ॥ ३० ॥

प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्या प्रियतमानि च ॥
तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्य श्रुत्वाऽपूर्वं नगोत्तम ॥३१॥

तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवी प्रपूजयेत् ॥
अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्या सति नगोत्तम ॥ ३२ ॥

अतस्तत्र वसेन्नित्य देवीभक्तिपरायण ॥
तानि स्थानानि सपश्यञ्जपन्देवी निरन्तरम् ॥ ३३ ॥

ध्यायस्तच्चरणाभोज मुक्तो भवति बधनात् ॥
इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय य पठेत् ॥ ३४ ॥

भस्मीभवन्ति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम् ॥
श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि द्विजाग्रत ॥३५॥

मुक्तास्तत्पितर सर्वे प्रयाति परमा गतिम् ॥ ३५½ ॥

(इस अध्याय मे देवी के तीर्थ, व्रत, उत्सव और पूजन की विधियो का वर्णन किया जा रहा है)।

हिमालय ने पूछा – हे देवेशि ! आपके लिए प्रिय, प्रसिद्ध, पवित्र एव दर्शनीय स्थान भू-मण्डल पर कितने हैं, यह बतलाने की कृपा कीजिये। हे मातृशक्ति ! साथ ही आप अपनी सन्तुष्टि करने वाले व्रत एव उत्सवो का भी वर्णन करने की कृपा कीजिये, जिससे मेरा जीवन सफल हो जाये।

श्री देवी जी ने उत्तर दिया :- हे पर्वतराज ? इस विश्व मे दृष्टिगोचर होने वाले सभी स्थान मेरे हैं। सम्पूर्ण कालो (समयो) मे मेरा व्रत किया जासकता है, अर्थात् सारे विश्व का सम्पूर्ण समय मेरे व्रत का समय हो सकता है। मेरे उत्सव भी सब समयो मे मनाए जा सकते हैं, क्योकि मै ही सबमे विराजमान शक्ति हू। फिर भी भक्त वात्सल्यता के कारण, अर्थात् भक्त के प्रेम के कारण कुछ स्थानो का परिचय मैं यहा कराती हू। आप सावधान हो कर सुने।

१ इस विश्व मे कोलापुर नाम का एक परम प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ पर लक्ष्मी सदा विराजमान रहती है।
२ दूसरे स्थान का नाम मातृपुर है, इसमे भगवती 'रेणुका' विराजमान रहती हैं।
३ तुलजापुर मेरा तीसरा स्थान है।

४ ऐसे ही एक स्थान का नाम सप्तशृ ग है।

५. हिंगुला देवी का स्थान हिंगुला है।

६ ज्वालामुखी का स्थान ज्वालामुखी है।

७ भ्रामरी का स्थान भ्रामरी है।

८. रक्तदन्तिका देवी का स्थान रक्तदन्तिका है।

९ श्री दुर्गा देवी का स्थान दुर्गापुर है।
इस प्रकार इन देवियो के साथ इन्ही के नाम से ये स्थान प्रसिद्ध हैं।

१० भगवती विन्ध्याचल निवासिनी देवी का सर्वोत्तम स्थान विन्ध्याचल पर्वत है।

११ अन्नपूर्णा का स्थान काचीपुर मे है। यह भी परमोत्तम स्थान है।

१२ देवी भीमा और विमला के उत्तम स्थान इन्ही के नाम के विख्यात हैं।

१३ श्री चन्द्रला का महास्थान कर्नाटक देश मे हैं।

१४ ऐसी ही एक कौशकी देवी का स्थान भी वहा पर ही है।

१५ निलाम्बा देवी का स्थान नील पर्वत के शिखर पर है।

१६. जाम्बू नदेश्वरी का शुभ स्थान श्रीनगर मे है।

१७. गुह्य काली का महान् स्थान नेपाल देश मे है।

१८ भगवती मीनाक्षी का स्थान चिदम्बर मे है।

१९. देवी सुन्दरी का परम उत्तम स्थान वेदारण्य मे है।

२० पराशक्ति का महान् स्थान एकाम्बर नामक स्थान मे है।

२१ भगवती मदालसा और योगेश्वरी का स्थान इन्ही के नामो से प्रसिद्ध है।

२२ देवी नील सरस्वती का स्थान चीन देश मे है।

२३ देवी बगला जी का सर्वोत्कृष्ट स्थान वैद्यनाथ धाम मे है।

२४. मैं सर्वैश्वर्य सम्पन्ना भगवती भुवनेश्वरी हू। मेरा स्थान मणि-द्वीप पर्वत पर है।

२५ जब शंकर जी अपनी पत्नी सती का शरीर लेकर घूम रहे थे, उस समय सती का योनि भाग (अङ्गो का मुख्यभाग) जहा गिरा, वह स्थान कामरूप नाम के देश से प्रसिद्ध हो गया। वही भगवती त्रिपुर सुन्दरी का स्थान है। त्रिपुर सुन्दरी से सुशोभित यह स्थान जगत् के सब स्थानो मे रत्नभूत है, अर्थात् उन सब मे से श्रेष्ठ है। धरातल मे इससे बढकर प्रसिद्ध स्थान कही भी सुलभ नही। यह स्थान इतना उच्चकोटि का स्थान है, कि प्रत्येक मास मे देवी यहा रजस्वला हुआ करती हैं। उस समय वहा के रहने वाले सभी प्रधान देवता उस पर्वत पर आकर ठहरने की व्यवस्था कर लेते हैं, क्योकि उस समय वहा की सम्पूर्ण भूमि देवीमय हो जाती है। ऐसा बुद्धिमान् व्यक्ति कहते हैं। अत उस कामाख्या योनि मण्डल से श्रेष्ठतर अन्य कोई स्थान नही है।

२६ हे हिमालय! सम्पूर्ण ऐश्वर्यो से सम्पन्न पुष्कर क्षेत्र भगवती गायत्री का उत्तम स्थान है।

२७ अमरकण्टक क्षेत्र मे भगवती चण्डिका का स्थान है।

२८ प्रभासक क्षेत्र मे भगवती पुष्करेक्षिणी का स्थान है।

२९ नैमिषारण्य नामक जो परम प्रसिद्ध स्थान है, वहा सम्पूर्ण शुभ लक्षणो से सुशोभित भगवती ललिता सदा विराजमान रहती है।

३० पुष्कराक्ष मे देवी पुरुहूता का उत्तम स्थान है।

३१ आषाढी मे देवी रति का उत्तम स्थान है।

३२ चण्डमुण्डी नामक स्थान मे चण्ड और मुण्ड का वध करने वाली परमेश्वरी "दण्डिनी" विराजमान है।

३३ भारभूति स्थान मे देवी भूति का स्थान है।

३४ नाकुल स्थान मे नकुलेश्वरी देवी का स्थान है।

३५ हरिश्चन्द्र नामक स्थान मे भगवती चन्द्रिका का स्थान है।

३६ श्रीशैल पर्वत पर भगवती शांकरी का स्थान है।

३७ जप्येश्वर मे देवी त्रिशूला और अमरकेश्वर मे देवी सूक्ष्मा विराजमान रहती है।

३८ महाकाल नामक क्षेत्र मे भगवती शांकरी का स्थान है।

३९ मध्यम सज्ञक स्थान मे शर्वाणी रहती है।
४० केदार नामक क्षेत्र मे देवी मार्गदायिनी शोभा देती है।
४१ भैरव नामक स्थान मे भगवती भैरवी का स्थान है।
४२ गया मे भगवती मगला का स्थान है।
४३. नाकुल मे स्त्रायम्भुवी देवी रहती है।
४४ कनखल मे भगवती उग्रा का स्थान है।
४५ विमलेश्वर मे विमलेश्वरी भगवती का स्थान है।
४६ महानन्दा का स्थान अट्टहास नामक स्थान मे है।
४७ महन्तिका देवी महेन्द्र पर्वत पर निवास करती है।
४८ भीमा पर्वत पर भगवती भीमेश्वरी का स्थान है।
४९ वस्त्रापथ नामक स्थान मे भवानी शकरी का स्थान है।
५० अर्थकोटि पर्वत पर रुद्राणी का स्थान है।
५१ अविमुक्त अर्थात् काशी क्षेत्र मे विशालाक्षी का स्थान है।
५२. महालय मे महाभागा का स्थान है।
५३ गोकर्ण मे भद्रकर्णी का स्थान है।
५४ भद्रकर्णक स्थान मे भद्रा का स्थान है।
५५ सुवर्णाक्ष नामक स्थान मे उत्पलाक्षी भगवती का स्थान है।
५६ स्थाणु नामक स्थान मे स्थाण्वीशा शक्ति विराजमान है।
५७. कमलालय मे कमला शक्ति का स्थान है।
५८ प्रचण्डा शक्ति छगलडक स्थान में विराजमान है।
५९. त्रिसन्ध्या शक्ति कुरण्डल मे विराजमान है।
६० माकोट मे मुकुटेश्वरी शक्ति विराजमान है।
६१ मण्डलेश नामक स्थान मे शाडकी शक्ति विराजमान है।
६२ कालजर पर्वत पर काली का स्थान है।
६३ शकुकर्ण पर्वत पर ध्वनि शक्ति विराजमान है।
६४ स्थूलकेश्वर पर्वत पर स्थूला देवी विराजमान हैं।

६५ ज्ञानियो के हृदय रूपी कमल पर परमेश्वरी हृल्लेखा (ह्रीबीजमय शक्ति) विराजमान है।

६६ हे पर्वतराज हिमालय ! उपर्युक्त प्रकार से वर्णित इस देवी के लिए प्रियतम, अर्थात् अत्यन्त प्रियकर स्थानो का वर्णन कर दिया गया है। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र के महात्म्य को सुन कर, विधि पूर्वक जो विधान पूर्वोक्त प्रकार से वर्णित किया गया है, उसका अनुसरण करते हुए देवी का पूजन करना चाहिये ।

हे पर्वतराज ! देवी के लिए प्रियकर उपर्युक्त स्थानो मे जो व्यक्ति पहुचने मे असमर्थ हो, उन्हें सब क्षेत्रो के महात्म्य का फल वाराणसी मे भी प्राप्त हो सकता है, क्योकि काशी सम्पूर्ण क्षेत्र-मय स्थान है। इसलिए देवी मे श्रद्धा एव भक्ति रखने वाले व्यक्ति को काशी मे रहने का प्रयत्न करना चाहिये और वहा रहते हुए उपर्युक्त स्थानो के दर्शन करते हुए देवी मन्त्रो का जप एव उनके चरण कमलो का ध्यान करना चाहिये। इस पुण्य कर्म के प्रभाव से मनुष्य ससार रूपी बन्धनो से विमुक्त हो, मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

हे हिमालय ! जो पुरुष प्रात काल उठ कर श्री भगवती जी के उपर्युक्त नामो का उच्चारण करता है, उसके सम्पूर्ण पाप उसी क्षण भस्म हो जाते हैं। प्रत्येक ब्राह्मण को चाहिये कि श्राद्ध के समय सर्वप्रथम इन देवी नामो का पाठ करे। ऐसा करने से उसके पितर नाना प्रकार के कष्टो से विमुक्त होकर परम पद को प्राप्त हो जाते हैं ॥३५½॥

अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत ॥३६॥

नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नत ॥
व्रतमनन्ततृतीयाख्य रसकल्याणिनीव्रतम् ॥३७॥

आर्द्रानन्दकर नाम्ना तृतीयाया व्रत च यत् ॥
शुक्रवारव्रत चैव तथा कृष्णचतुर्दशी ॥३८॥

भौमवारव्रत चैव प्रदोषव्रतमेव च ।।
यत्र देवो महादेवो देवी सस्थाप्य विष्टरे ।।३९।।

नृत्य करोति पुरत सार्धं देवैर्निशामुखे ।।
तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम् ।।४०।।

प्रतिपक्ष विशेषेण तद् देवीप्रीतिकारम् ।।
सोमवारव्रत चैव ममातिप्रियकृन्नग ।।४१।।

तत्रापि देवी सपूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत् ।।
नवरात्रद्वय चैव व्रत प्रीतिकर मम ।।४२।।

एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च ।।
व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सर ।।४३।।

प्राप्नोति मम सायुज्य स मे भक्त स मे प्रिय ।।
उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो ।।४४।।

शयनोत्सव तथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सवम् ।।
रथोत्सव च मे कुर्याद्दमनोत्सवमेव च ।।४५।।

पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम् ।।
मम भक्त सदाकुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान् ।।४६।।

मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनी ।।
कुमारीर्वटुकाश्चापि मद्बुद्ध्या मद्गतान्तर ।।४७।।

वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्कुसुमादिभि ।।
य एव कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतन्द्रित ।।४८।।

स धन्य कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीते पात्रमजसा ।।
सर्वमुक्त समासेन मम प्रीतिप्रदायकम् ।।४९।।

नाशिष्याय प्रदातव्य नाभक्ताय कदाचन ॥४६½॥

हे सुव्रत, अर्थात् श्रेष्ठ व्रतो का पालन करने वाले हिमालय ! इस समय मैं आपको व्रतो के विषय मे वर्णन करूगी । जिन व्रतो को ससार के प्रत्येक नर-नारी को यत्न पूर्वक करना चाहिये । जो तृतीयाव्रत है उसके तीन नाम हैं, अनन्ततृतीयाव्रत, रसकल्याणिनी व्रत, एव आर्द्रानन्दकरी व्रत। शुक्रवार व्रत, कृष्ण चतुर्दशी व्रत, मगलवार व्रत, ये भी देवी के लिए प्रिय व्रत हैं। इसी प्रकार प्रदोष व्रत भी है, जिस व्रत मे भगवान् शकर आधी रात मे अपनी प्रेयसी भवानी के आसन पर बैठकर उनके सामने देवतातो के साथ नृत्य करते है । उस दिन उपवास करके सायकाल के प्रदोष मे देवी की पूजा करनी चाहिये । देवी को विशेष रूप से सन्तुष्ट करने वाला यह व्रत प्रत्येक पक्ष मे मनाया जाता है।

हे हिमालय ! सोमवार का व्रत भी मुझे बहुत प्रिय हैं । इस व्रत मे दिन भर उपवास करने के पश्चात् देवी का पूजन करे और फिर रात्रि मे भोजन करना चाहिये । चैत्र और आश्विन दोनो महीनो के नवरात्र मुझे बहुत प्रिय हैं । हे राजन् ! इसी प्रकार अन्य भी नाना प्रकार के नित्य और नैमित्तिक व्रत हैं। अर्थात् जो व्यक्ति रागद्वेष से रहित होकर मेरी प्रसन्नता के लिए उनका पालन करता है, उसे मेरा सायुज्य पद प्राप्त हो जाता है, अर्थात् मेरे मे और उसमे किसी प्रकार का भेद नही रहता। उसे मैं अपना भक्त और प्रिय समझती हू।

हे राजन् ! व्रतो के अवसर डोला (झूला) सजाकर मेरे उत्सव मनाने चाहियें। शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव, और दमनोत्सव आदि अनेक उत्सव है । इन्हे मनाना आवश्यक है। सावन के महीने मे एक पवित्रोत्सव होता है, जिसे मनाने से मैं बहुत प्रसन्न होती हू। मेरे भक्त को सदा इस व्रत का पालन करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से महोत्सव है उन सबका अनुसरण भी मेरे भक्त को करना चाहिये। इन उत्सवो के अवसर पर मेरे भक्तो को प्रसन्नतापूर्वक भोजन करायें। इसी प्रकार सुन्दर वस्त्रो को धारण करनेवाली स्त्रियो, कुमारी कन्याओ एव ब्रह्मचारी वर्ग को मेरा ही स्वरूप समझकर भोजन करायें। उदार दिल से धन खर्च करते हुए

ब्राह्मणो कुमारी कन्याओ एव ब्राह्मण बालको का पुष्प आदि से पूजन करना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार प्रति वर्ष मेरा पूजन करता है, वह ही धन्य, कृत-कृत्य एव मेरी प्रीति का निस्सन्देह रूप से पात्र है। उपर्युक्त प्रकार से वर्णित ब्रह्मविद्या का उपदेश, जोकि मेरे लिए अत्यन्त प्रियकर है, आपके समक्ष कर दिया है। जो व्यक्ति मेरे अनुशासन को न मानता हो और मुझ मे जिसकी श्रद्धा न हो, उसे इस विद्या का उपदेश नही करना चाहिये ॥ ४७½ ॥

इति श्रीदेवी-भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
देवी गीता शास्त्रे अष्टमोऽध्याय

नवमोऽध्याय.

हिमालय उवाच—

देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके ।।
ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजाम् ।।१।।

श्री देव्युवाच –

वक्ष्ये पूजाविधिं राजनम्बिकाया यथा प्रियम् ।।
अत्यंतश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुंगव ।। २ ।।

द्विविधा मम पूजा स्याद्बाह्या चाभ्यंतराऽपि च ।।
बाह्याऽपि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तान्त्रिकी तथा ।। ३ ।।

वैदिक्यर्चाऽपि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर ।।
वैदिकी वैदिकै कार्या वेददीक्षासमन्वितै ।।४।।

तन्त्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तान्त्रिकी सश्रिता भवेत् ।।
इत्थ पूजारहस्य च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ।। ५ ।।

करोति यो नरो मूढ स पतत्येव सर्वथा ।।
तत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा ता वदाम्यहम् ।।६।।

यन्मे साक्षात्पर रूप दृष्टवानसि भूधर ।।
अनतशीर्षनयनमनतचरण महत् ।। ७ ।।

सर्वशक्तिसमायुक्त प्रेरक यत्परात्परम् ।।
तदेव पूजयेन्नित्य नमेद्ध्यायेत्स्मरेदपि ।। ८ ।।

इत्येतत्प्रथमार्चाया स्वरूप कथित नग ॥
शात समाहितमना दभाहकारवर्जित ॥९॥

तत्परो भव तद्याजी तदेव शरण व्रज ॥
तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥१०॥

अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रित ॥
यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामैव परितोपय ॥११॥

इत्थ ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात् ॥
मत्परा ये मदासिक्तचित्ता भक्तवरा मता ॥१२॥

प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥
ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुन ॥१३॥

प्राप्याह सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभि ॥
धर्मात्सजायते भक्तिर्भक्त्या सजायते परम् ॥१४॥

देवी पूजन के नाना प्रकार के प्रसगो का वर्णन इस अध्याय मे है।)

हिमालय ने कहा, हे देवेश्वरि ! हे महेशानि ! हे करुणानिधे ! हे अम्बिके ! अब आप अपनी पूजा विधि का युक्तियुक्त वर्णन करने की कृपा कीजिये। श्री देवी जी ने उत्तर दिया, हे पर्वतराज ! जगदम्बा, अर्थात् मुझे यथार्थ रूप मे प्रसन्न करने वाली जोविधि है, उसका मैं वर्णन करती हू। आप अत्यन्त श्रद्धालु होकर उसका श्रवण करो। मेरी पूजा दो प्रकार की है, वाह्य और आभ्यन्तर भेद से। वाह्य पूजा के भी वैदिकी और तान्त्रिकी पूजा इस प्रकार दो भेद है। हे हिमालय ! मूर्ति भेद से वैदिकी पूजा भी दो प्रकार से की जाती है। वैदिकी पूजा मे वेद की दीक्षा से युक्त, ... वेदो के विशेष ज्ञाता मनुष्यो द्वारा वेद के मन्त्रो का उच्चार... की पूजा की जाती है। जिस पूजा ... गोक्त म... व्यक्तियो द्वारा तन्त्रोक्त मन्त्रो से

पूजा कहते हैं । इस प्रकार जो व्यक्ति पूजा के रहस्य को न समझता हुआ अज्ञानवश विधि-रहित, अर्थात् विपरीत प्रकार से पूजन में संलग्न होता है, वह सर्वथा पतन को प्राप्त होता है । सर्वप्रथम जो वैदिकी पूजा है, उस की विधि इस प्रकार है —

हे हिमालय ! आप मेरे जिस महान् रूप का साक्षात्कार कर चुके हो, जिसमें नाना प्रकार के नाना मस्तक, नेत्र और चरण विराजमान थे, जो सर्व प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ एवं परम प्रेरणा देने वाला था, आपको उसी रूप का सदा पूजन, नमस्कार, ध्यान और स्मरण करना चाहिये । हे पर्वतराज ! पूजा का प्रथम स्वरूप यही है। आप चित्त को शान्त करके सावधानी पूर्वक दम्भ और अहंकार से शून्य होकर उसी रूप की शरण में आइये । यज्ञशील, अर्थात् यज्ञ करने वाला बनकर पूजा में पूरी तरह तत्पर रहो । मेरे उस रूप को सदा मन के पटल पर देखते रहो ।

मेरे मन्त्रों का जप और मेरे रूप का ध्यान सदा रहना चाहिये । अनन्य एवं प्रेम-पूर्ण भक्ति से मेरे उपासक बनकर यज्ञों द्वारा मेरा पूजन, तप एवं दान के द्वारा मुझे ही सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा करने से मेरी कृपा द्वारा प्रत्येक भक्त संसार के बन्धनों से छुटकारा पा लेता है । हे हिमालय ! आपके द्वारा उपर्युक्त पूजा क्रम अपनाने से मेरी कृपा आपको भी संसार बन्धन से विमुक्त कर देगी । जो व्यक्ति सदा मुझ पर निर्भर रहते हैं तथा जिन का चित्त निरन्तर मुझ में लगा रहता है, वे मेरे उत्तम भक्त माने जाते हैं । मैंने प्रतिज्ञा की हुई है कि जो व्यक्ति मेरे भक्त है, मैं उनका संसार रूपी सागर से उद्धार करूंगी ।

हे राजन् हिमालय ! मैं ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग, इनमें से किसी एक के द्वारा भी प्राप्त हो सकती हूं, न केवल कर्मयोग से । कर्मयोग भी निरर्थक नहीं होता । कर्म करने से, अर्थात् सत् कर्म के प्रभाव से, पाप का विनाश होता है । पाप का विनाश होने से धार्मिक भावना उत्पन्न होती है । धार्मिक भावना से भक्ति का प्रादुर्भाव होता है । भक्ति उस परम ब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति में मुख्य कारण है ॥१४॥

इत्येतत्प्रथमार्चाया स्वरूप कथित नग ॥
शात समाहितमना दभाहकारवर्जित ॥६॥

तत्परो भव तद्याजी तदेव शरण व्रज ॥
तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥१०॥

अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रित ॥
यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय ॥११॥

इत्थ ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भववन्धनात् ॥
मत्परा ये मदासिक्तचित्ता भक्तवरा मता ॥१२॥

प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥
ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुन ॥१३॥

प्राप्याह सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभि ॥
धर्मात्सजायते भक्तिर्भक्त्या सजायते परम् ॥१४॥

(देवी पूजन के नाना प्रकार के प्रसगो का वर्णन इस अध्याय मे है।)

हिमालय ने कहा, हे देवेश्वरि ! हे महेशानि ! हे करुणानिधे ! हे अम्बिके ! अव आप अपनी पूजा विधि का युक्तियुक्त वर्णन करने की कृपा कीजिये। श्री देवी जी ने उत्तर दिया, हे पर्वत-राज ! जगदम्बा, अर्थात् मुझे यथार्थ रूप मे प्रसन्न करने वाली जोविधि है, उसका मैं वर्णन करती हू। आप अत्यन्त श्रद्धालु होकर उसका श्रवण करो। मेरी पूजा दो प्रकार की है, वाह्य और आभ्यन्तर भेद से। वाह्य पूजा के भी वैदिकी और तान्त्रिकी पूजा इस प्रकार दो भेद है। हे हिमालय ! मूर्ति भेद से वैदिकी पूजा भी दो प्रकार से की जाती है। वैदिकी पूजा मे वेद को दीक्षा से युक्त, अर्थात् वेदो के विशेप ज्ञाता मनुष्यो द्वारा वेद के मन्त्रो का उच्चारण करके भगवती की पूजा की जाती है। जिस पूजा मे तन्त्रोक्त मन्त्रो की दीक्षा-सम्पन्न व्यक्तियो द्वारा तन्त्रोक्त मन्त्रो से पूजा सम्पन्न होती है, उसे तान्त्रिकी

पूजा कहते है । इस प्रकार जो व्यक्ति पूजा के रहस्य को न समझता हुआ अज्ञानवश विधि-रहित, अर्थात् विपरीत प्रकार से पूजन मे सलग्न होता है, वह सर्वथा पतन को प्राप्त होता है । सर्वप्रथम जो वैदिकी पूजा है, उस की विधि इस प्रकार है —

हे हिमालय ! आप मेरे जिस महान् रूप का साक्षात्कार कर चुके हो, जिसमे नाना प्रकार के नाना मस्तक, नेत्र और चरण विराजमान थे, जो सर्व प्रकार की शक्तिओ से सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ एव परम प्रेरणा देने वाला था, आपको उसी रूप का सदा पूजन, नमस्कार, ध्यान और स्मरण करना चाहिये। हे पर्वतराज ! पूजा का प्रथम स्वरूप यही हैं। आप चित्त को शान्त करके सावधानी पूर्वक दम्भ और अहकार से शून्य होकर उमी रूप की शरण मे आइये। यज्ञशील, अर्थात् यज्ञ करने वाला बनकर पूजा मे पूरी तरह तत्पर रहो। मेरे उस रूप को सदा मन के पटल पर देखते रहो ।

मेरे मन्त्रो का जप और मेरे रूप का ध्यान सदा रहना चाहिये । अनन्य एव प्रेम-पूर्ण भक्ति से मेरे उपासक बनकर यज्ञो द्वारा मेरा पूजन, तप एव दान के द्वारा मुझे ही सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने से मेरी कृपा द्वारा प्रत्येक भक्त ससार के बन्धनो से छुटकारा पा लेता है । हे हिमालय ! आपके द्वारा उपर्युक्त पूजा क्रम अपनाने से मेरी कृपा आपको भी ससार बन्धन से विमुक्त कर देगी। जो व्यक्ति सदा मुझ पर निर्भर रहते है तथा जिन का चित्त निरन्तर मुझ मे लगा रहता है, वे मेरे उत्तम भक्त माने जाते है। मैंने प्रतिज्ञा की हुई है कि जो व्यक्ति मेरे भक्त हैं, मैं उनका ससार रूपी सागर से उद्धार करूगी।

हे राजन् हिमालय ! मैं ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग एव ज्ञानयोग, इनमे से किसी एक के द्वारा भी प्राप्त हो सकती हू, न केवल कर्मयोग से । कर्मयोग भी निरर्थक नही होता । कर्म करने से, अर्थात् सत् कर्म के प्रभाव से, पाप का विनाश होता है । पाप का विनाश होने से धार्मिक भावना उत्पन्न होती है । धार्मिक भावना से भक्ति का प्रादुर्भाव होता है । भक्ति उस परम ब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति मे मुख्य कारण है ॥१४॥

इत्येतत्प्रथमार्चाया स्वरूप कथित नग ॥
शात समाहितमना दभाहकारवर्जित ॥९॥

तत्परो भव तद्याजी तदेव शरण व्रज ॥
तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥१०॥

अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रित ॥
यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामैव परितोषय ॥११॥

इत्थ ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात् ॥
मत्परा ये मदासिक्तचित्ता भक्तवरा मता ॥१२॥

प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥
ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुन ॥१३॥

प्राप्याह सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभि ॥
धर्मात्सजायते भक्तिर्भक्त्या सजायते परम् ॥१४॥

(देवी पूजन के नाना प्रकार के प्रसगो का वर्णन इस अध्याय मे है।)

हिमालय ने कहा, हे देवेश्वरि ! हे महेशानि ! हे करुणानिधे ! हे अम्बिके ! अब आप अपनी पूजा विधि का युक्तियुक्त वर्णन करने की कृपा कीजिये । श्री देवी जी ने उत्तर दिया, हे पर्वत-राज ! जगदम्बा, अर्थात् मुझे यथार्थ रूप मे प्रसन्न करने वाली जोविधि है, उसका मैं वर्णन करती हू। आप अत्यन्त श्रद्धालु होकर उसका श्रवण करो । मेरी पूजा दो प्रकार की है, वाह्य और आभ्यन्तर भेद से । वाह्य पूजा के भी वैदिकी और तान्त्रिकी पूजा इस प्रकार दो भेद है। हे हिमालय ! मूर्ति भेद से वैदिकी पूजा भी दो प्रकार से की जाती है। वैदिकी पूजा मे वेद की दीक्षा से युक्त, अर्थात् वेदो के विशेष ज्ञाता मनुष्यो द्वारा वेद के मन्त्रो का उच्चारण करके भगवती की पूजा की जाती है । जिस पूजा मे तन्त्रोक्त मन्त्रो की दीक्षा-सम्पन्न व्यक्तियो द्वारा तन्त्रोक्त मन्त्रो से पूजा सम्पन्न होती है, उसे तान्त्रिकी

पूजा कहते है । इस प्रकार जो व्यक्ति पूजा के रहस्य को न समझता हुआ अज्ञानवश विधि-रहित, अर्थात् विपरीत प्रकार से पूजन मे सलग्न होता है, वह सर्वथा पतन को प्राप्त होता है । सर्वप्रथम जो वैदिकी पूजा है, उस की विधि इस प्रकार है —

हे हिमालय ! आप मेरे जिस महान् रूप का साक्षात्कार कर चुके हो, जिसमे नाना प्रकार के नाना मस्तक, नेत्र और चरण विराजमान थे, जो सर्व प्रकार की शक्तियो से सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ एव परम प्रेरणा देने वाला था, आपको उसी रूप का सदा पूजन, नमस्कार, ध्यान और स्मरण करना चाहिये । हे पर्वतराज ! पूजा का प्रथम स्वरूप यही हैं । आप चित्त को शान्त करके सावधानी पूर्वक दम्भ और अहकार से शून्य होकर उसी रूप की शरण मे आइये । यज्ञशील, अर्थात् यज्ञ करने वाला बनकर पूजा मे पूरी तरह तत्पर रहो । मेरे उस रूप को सदा मन के पटल पर देखते रहो ।

मेरे मन्त्रो का जप और मेरे रूप का ध्यान सदा रहना चाहिये । अनन्य एव प्रेम-पूर्ण भक्ति से मेरे उपासक बनकर यज्ञो द्वारा मेरा पूजन, तप एव दान के द्वारा मुझे ही सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा करने से मेरी कृपा द्वारा प्रत्येक भक्त ससार के बन्धनो से छुटकारा पा लेता है । हे हिमालय ! आपके द्वारा उपर्युक्त पूजा क्रम अपनाने से मेरी कृपा आपको भी ससार बन्धन से विमुक्त कर देगी । जो व्यक्ति सदा मुझ पर निर्भर रहते है तथा जिन का चित्त निरन्तर मुझ मे लगा रहता है, वे मेरे उत्तम भक्त माने जाते है । मैंने प्रतिज्ञा की हुई है कि जो व्यक्ति मेरे भक्त हैं, मैं उनका ससार रूपी सागर से उद्धार करूगी ।

हे राजन् हिमालय ! मैं ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग एव ज्ञानयोग, इनमे से किसी एक के द्वारा भी प्राप्त हो सकती हू, न केवल कर्मयोग से । कर्मयोग भी निरर्थक नही होता । कर्म करने से, अर्थात् सत् कर्म के प्रभाव से, पाप का विनाश होता है । पाप का विनाश होने से धार्मिक भावना उत्पन्न होती है । धार्मिक भावना से भक्ति का प्रादुर्भाव होता है । भक्ति उस परम ब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति मे मुख्य कारण है ॥१४॥

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदित यत्स धर्म प्रकीर्तित ॥
अन्यशास्त्रेण य प्रोक्तो धर्माभास स उच्यते ॥१५॥

सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेद समुत्थित ॥
अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुति ॥१६॥

स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गता ॥
मन्वादीना श्रुतीना च तत प्रामाण्यमिष्यते ॥१७॥

क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थं कटाक्षेण परोदितम् ॥
धर्म वदन्ति सोऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकै ॥१८॥

अन्येषा शास्त्रकर्तृणामज्ञान प्रभवत्वत ॥
अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता ॥१९॥

तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं सर्वदा वेदमाश्रयेत् ॥
राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥२०॥

सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथ नृभि ॥
मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातय ॥२१॥

मया सृष्टास्ततो ज्ञेय रहस्य मे श्रुतेर्वच ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ॥२२॥

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम् ॥
देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप ॥२३॥

श्रुति और स्मृति मे प्रतिपादित जो सत् कर्म के नियम है, उन्हे ही धर्म कहा जाता है । अन्य शास्त्रो मे कथित धर्म को केवल धर्माभास कहते है। मैं ज्ञान एव सब कुछ करने की योग्यता से सम्पन्न हू । मुझ भगवती द्वारा उत्पन्न होने के कारण वेदो मे भी वे सभी गुण

विराजमान हैं, जो मुझ मे है। वेद से उत्पन्न श्रुति भी अप्रामाणिक नही है, क्योकि वेद अज्ञान के अभाव से युक्त है, अर्थात् वेदो मे अज्ञान नही है, बल्कि ज्ञान है। श्रुतियो के अर्थ का विस्तार करने के दृष्टिकोण से ही स्मृतियो का प्रकाशन हुआ है, जैसे मनु स्मृति आदि। इसलिए श्रुतियो और स्मृतियो की प्रामाणिकता स्वय सिद्ध है।

स्मृतियो और पुराणो मे कटाक्ष करते हुए कही कही वेद के विरुद्ध कुछ अश पाये जाते हैं। उसे भी धर्म वतलाया गया है। वैदिक विद्वानो को चाहिए कि उस अश का अनुसरण न करे, क्योकि अन्य शास्त्र कर्त्ताओ के वाक्य अज्ञान मूलक हैं। अज्ञान दोष से दूषित होने के कारण वे प्रामाणिक नही माने जा सकते। मोक्ष की प्राप्ति करने वाले मानव को सत् धर्म की प्राप्ति के निमित्त सर्वथा वेद का आश्रय लेना चाहिये। जैसे इस जगत् मे राजा की आज्ञा का कोई उल्लघन नही कर सकता, वैसे ही सर्वतत्र-स्वतत्र मुझ शासिका शक्ति की आज्ञा का पालन करने के निमित्त ही मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि वर्णो को उत्पन्न किया है।

अब मेरी वाणी स्वरूप जो श्रुति है, उसका अभिप्राय समझने का प्रयत्न कीजिए। हे हिमालय! जब जब धर्म की हानि, अर्थात् सत् कर्मो का अभाव, अधर्म की वृद्धि, अर्थात् दुष्ट कर्मो का प्रादुर्भाव वृद्धिशील होता है, उस समय ही मेरे अवतार हुआ करते है। इसलिए हे राजन् हिमालय! सत्-कर्मो के निमित्त देवताओ, दुष्ट कर्मो के निमित्त राक्षसो को मैंने इस सृष्टि मे उत्पन्न किया है॥२३॥

ये न कुर्वन्ति तद्धर्म तच्छिक्षार्थं मया सदा॥
सपादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत्॥२४॥

यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्य समाश्रयेत्॥
राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिण॥२५॥

ब्राह्मणैर्न च सम्भाव्या पक्तिग्राह्या न च द्विजै॥
अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च॥२६॥

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वश॥
वाम कापालक चैव कौलक भैरवागम॥२७॥

शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुक ॥
दक्षशापाद्भृगो. शापाद्दधीचेश्च च शापत ॥२८॥

दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृता ॥
तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमत सदा ॥२६॥

शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौरा शाक्तास्तथैवच ॥
गाणपत्या आगमाश्च प्रणीता शकरेण तु ॥३०॥

तत्र वेदविरुद्धोंऽशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित् ॥
वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ॥३१॥

सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत् ॥
वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान् ॥३२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् ॥
धर्मेण सहित ज्ञान पर ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥३३॥

सर्वैषणा परित्यज्य मामेव शरण गता ॥
सर्वभूतदयावतो मानाहकारवर्जिता ॥३४॥

मच्चित्तामद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रता ॥
सन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिण ॥३५॥

उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरसज्ञितम् ॥
तेषा नित्यावियुक्तानामहमज्ञानज तम ॥३६॥

ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न सशय ॥
इत्य वैदिकपूजाया प्रथमाया नगाधिप ॥३७॥

स्वरूपमुक्त सक्षेपाद्द्वितीयाया अथो ब्रुवे ॥
मूर्तौ वा स्थण्डिले वापि तथ ासूर्येन्दुमण्डले ॥३८॥

जलेऽथ वा बाणलिंगे यन्त्रे वाऽपि महापटे ॥
तथा श्रीहृदयाभोजे ध्यात्वा देवी परात्पराम् ॥३६॥

सगुणा करुणापूर्णा तरुणीमरुणारुणाम् ॥
सौदर्यसारसीमा ता सर्वावयवसुन्दरीम् ॥ ४० ॥

शृ गाररससम्पूणा सदा भक्तार्तिकातराम् ॥
प्रसादसुमुखीमवा चद्रखडशिखडिनीम् ॥ ४१ ॥

पाशाकुशवराभीतिधरामानन्दरू पिणीम् ॥
पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारयत ॥४२ ॥

यावदातरपूजायामधिकारो भवेन्न हि ॥
तावद्वाह्यामिमा पूजा श्रयेज्जाते तु ता त्यजेत् ॥ ४३ ॥

आभ्यतरा तु या पूजा सा तु सविल्लय स्मृत ॥
सविदेव पर रूपमुपाधिरहित मम ॥४४॥

अत सविदि मद्रूपे चेत स्थाप्य निराश्रयम् ॥
सविद्रूपातिरिक्त तु मिथ्या मायामय जगत् ॥ ४५ ॥

अत ससारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम् ॥
भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ॥ ४६ ॥

अत पर वाह्यपूजाविस्तार कथ्यते मया ॥
सावधानेन मनसा शृणु पर्वतसत्तम ॥ ४७ ॥

जो व्यक्ति मुझ से सम्बन्ध रखने वाले शुभ कर्म, अर्थात् धर्म और श्रेष्ठ शिक्षा का अनुमरण नही करते, उनके लिए मैंने उन नरको की रचना कर रखी है, वे नरक अत्यन्त भयकर हैं, जिनका नाम श्रवण करने से मानव का हृदय काप उठता है। नरक उन अधर्मी मनुष्यो मे भय उत्पन्न करने के लिए ही मैंने वनाये हैं, जो व्यक्ति सत्

धर्म का पालन न करके उसकी आज्ञा से विपरीत कर्म करता है, राजा को चाहिये कि उस अधर्मी व्यक्ति को अपने राज्य से निकाल दे। अन्यथा वे अधर्मी व्यक्ति राजा के राज्य का विनाश करने मे, अधर्म की वृद्धि करने मे सहायक होते है। ब्राह्मण लोगो को, अर्थात् ब्रह्म की पहचान करने वाले व्यक्तियो को उन व्यक्तियो से बात नही करनी चाहिये और न ही उन्हे अपनी पक्ति अर्थात् अपने समीप बिठाना चाहिये।

इस जगत् मे भिन्न भिन्न प्रकार के जितने भी शास्त्र श्रुति और स्मृतियो से विरुद्ध हैं वे सब शास्त्र कहे जाते हैं। उन शास्त्रो के नाम इस प्रकार हैं —वाम, कपाल, कौलक, भैरवागम, ये शास्त्र शिवजी भगवान् ने ससार के व्यक्तियो को मोह मे डालने के लिए बनाए है। इसके अतिरिक्त इसका अन्य कोई दूसरा कारण नही है। दक्ष प्रजापति के शाप, महर्षि भृगु के शाप से जो उच्चकोटि के ब्राह्मण पथभ्रष्ट हो गये थे, उनके उद्धार करने के निमित्त सोपान क्रम से अर्थात् सीढियो की भान्ति भगवान् शकर जी ने शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त और गाणपत्य शास्त्रो की रचना की उन शास्त्रो मे कही कही वेद से विरुद्ध अश भी है। यदि वैदिक व्यक्ति उस अश को ग्रहण भी करले तो कोई दोष नही। वेद से भिन्न अर्थ को स्वीकार करने मे ब्राह्मण को प्रयत्न नही करना चाहिये, अर्थात् वेद से अतिरिक्त नियमो का पालन ब्रह्मण के लिए हानिकारक है। इसीलिए वैदिक पुरुष को सब प्रकार के प्रयत्नो द्वारा वेद का आश्रय लेकर सत् धर्म मे प्रवृत्त होना चाहिये। वही शाश्वत् धर्म है। जिन शास्त्रो मे इस प्रकार के शाश्वत् धर्मो का विवेचन हो, उन शास्त्रो से ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह ज्ञान पर ब्रह्म को प्रकाशित कर देता है।

जो सम्पूर्ण इच्छाओ का त्याग करके मेरी ही शरण मे आ गये हैं, ससार के सब प्राणियो पर दया करते है, मान एव अहकार से शून्य हैं, जिनका चित्त मेरे मे सदा लगा रहता हे और प्राण भी सदा मेरी झलक से अनुप्राणित रहते हैं, जिनके द्वारा मेरे स्थानो की चर्चा होती रहती है, ऐसे सन्यासी, वानप्रस्थी, गृहस्थी एव ब्रह्मचारी वर्ग यदि भक्ति पूर्वक मेरे ऐश्वर्य-सम्पन्न रूप की उपासना करते है, मेरे ध्यान मे सदा लगे

रहने के कारण उन पुरुषो के अज्ञानजन्य अन्धकार को ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश द्वारा तुरन्त नष्ट कर देती हू। इसमे कोई सन्देह नही है। हे हिमालय ! इस प्रकार वेदो के सिद्धान्तो के आधार पर निर्भर रहने वाली यह मेरी प्रथम वैदिकी पूजा है। इसका स्वरूप सक्षेप से वर्णन कर दिया गया है।

अब मेरी दूसरी पूजा के विषय मे सुनिये। उसका मैं वर्णन करती हू। मूर्ति, वेदी, सूर्य अथवा चन्द्रमा का मण्डल, जल, बाणाकार चिन्ह, यन्त्र, महान् चित्रपट, अथवा हृदय रूपी कमल पर मुझ परमेश्वरी का ध्यान करके पूजन करे। मेरे सगुण रूप का ध्यान करके पूजन करे। मेरे सगुण रूप का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि उस समय मानव को मेरे प्रति यह भावना उत्पन्न करनी चाहिये कि देवी भगवती करुणा से परिपूर्ण हैं। इनका शरीर युवावस्था से परिपूर्ण है और सन्ध्याकालीन लालिमा के समान इनका शरीर रक्त वर्ण की शोभा से अलकृत है। इनका शरीर सुन्दरता की परम सीमा है। इनके सम्पूर्ण अग प्रत्यग अत्यन्त मनमोहक हैं। कोई भी ऐसा शृगार नही है जो इन अगो मे न किया गया हो। भक्तो के दुख से ये सदा दुखी हुआ करती हैं। इस भगवती जगदम्बा का मुख मण्डल प्रसन्नता से भरा रहता है। मुकुट पर बाल-चन्द्रमा अर्थात् छोटे से चन्द्रमा का चिन्ह और मयूरपख शोभा पा रहे हैं। इन्होने हाथो मे पाश, अकुश, वर और अभय मुद्रा को धारण कर रखा है। ये आनन्दमय रूप से सुशोभित हैं।

उपर्युक्त विधि द्वारा मेरा ध्यान करके यथाशक्ति धन के अनुसार पूजा साधनो को अपना कर मेरी पूजा के कार्य को सम्पन्न करे। जब तक मेरी आभ्यन्तरीय पूजा का अधिकारी न बने तब तक उसे बाह्य पूजा ही करनी चाहिये। आभ्यन्तरीय पूजा का अधिकारी होते ही बाह्य पूजा छोड कर आभ्यन्तरीय पूजा मे लग जाये, क्योकि मेरी जो आभ्यन्तरीय पूजा है, वह थोड़े समय के बाद ही ज्ञान मे लीन हो जाती है। उपाधि शून्य ज्ञान ही मेरा परम रूप है। अत मेरे ज्ञानमय रूप मे अपने आश्रयहीन चित्त को लगा देना चाहिये।

इस ज्ञानमय रूप के अतिरिक्तयह मायामय, प्रपचमय जगत् मिथ्या

है अर्थात् सदा स्थायी नही । जन्म और मृत्यु की क्रिया को शात करने के उद्देश्य से, अर्थात् ससार रूपी सागर से पार होने के निमित्त योग युक्त चित्त द्वारा चिन्ता एव विचार आदि से मन को शून्य करके योग युक्त विधि द्वारा मन की वृत्ति को अनुसन्धानपूर्ण प्रवृत्ति मे बदलकर, चित्त सज्ञक मन के द्वारा योग करता हुआ मेरा चिन्तन करे, क्योकि मैं सर्वसाक्षिणी और आत्मस्वरूपिणी और शक्ति हू ।

हे हिमालय ! इसके बाद बाह्य पूजा का विस्तार से वर्णन करूगी । आप सावधानीपूर्वक सुने ।

इति श्रीदेवी–भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
देवी गीता शास्त्रे नवमोऽध्याय.

दशमोऽध्यायः

देव्युवाच—

प्रातरुत्थाय शिरसि सस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् ॥
कर्पूराभ स्मरेत्तत्र श्रीगुरु निजरूपिणम् ॥१॥

सुप्रसन्न लसद्भूषाभूषित शक्तिसयुतम् ॥
नमस्कृत्य ततो देवी कुण्डली मस्मरेद् बुध ॥२॥

प्रकाशमाना प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥
अत पदव्यामनुसचरतीमानन्दरूपामवला प्रपद्ये ॥३॥

ध्यात्वैव तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥
मा ध्यायेदथ शौचादिक्रिया सर्वा समापयेत् ॥४॥

अग्निहोत्र ततो हुत्वा मत्प्रीत्यथ द्विजोत्तम ॥
होमाते स्वासने स्थित्वा पूजासकल्पमाचरेत् ॥५॥

भूतशुद्धि पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च ॥
हृल्लेखामातृकान्यास नित्यमेव समाचरेत् ॥६॥

मूलाधारे हकार च हृदये च रकारकम् ॥
भ्रूमध्ये तद्वदीकार ह्रीकार मस्तके न्यसेत् ॥७॥

तत्तन्मत्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत् ॥
कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठ धर्मादिभि पुन ॥८॥

ततो ध्यायेन्महादेवी प्राणायामैर्विजृम्भिते ॥
हृदभोजे मम स्थाने पचप्रेतासने बुध ॥९॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिव ॥
एते पच महाप्रेता पादमूले मम स्थिता ॥ १० ॥

पचभूतात्मका ह्येते पचावस्थात्मका अपि ॥
अह त्वव्यक्तचिद्रूपा तदतीनाऽस्मि सर्वदा ॥ ११ ॥

ततो विष्टरता याता शक्तितन्त्रेषु सर्वदा ॥
ध्यात्वैव मानसैर्भोगै पूजयेन्मा जपेदपि ॥ १२ ॥

जप समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापन चरेत् ॥
पात्रासादनक कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ॥ १४ ॥

जलेन तेन मनुना चास्त्रमत्रेण देशिक ॥
दिग्बध च पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा तत परम्

जलेन तेन मनुना चास्त्रमत्रेण देशिक ॥
दिग्बध व पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा तत परम् ॥ १४ ॥

तदनुज्ञा समादाय बाह्यपीठे तत परम् ॥
हृदिस्थाय भाविता मूर्ति मम दिव्या मनोहराम् ॥ १५ ॥

आवाहयेत्तत पीठे प्राणस्थापनविद्यया ॥
आसनावाहसे चार्घ्य पाद्याद्याचमन तथा ॥ १६ ॥

स्नान वासोद्वय चैव भूपणानि च सर्वश ।
गध पुष्प यथायोग्य दत्त्वा देव्यै स्वभक्ति ॥ १७ ॥

यन्त्रस्थानामावृतीना पूजन सम्यगाचरेत् ॥
प्रतिवारमशक्ताना शुक्रवारो नियम्यते ॥ १८ ॥

(इस अध्याय मे पूजन का विधान एव उसके महत्व rा विवेचन किया है) ।

श्री देवी जी ने कहा — हे हिमालय ! प्रात काल उठकर आप अपने मस्तिष्क के ब्रह्मरन्ध्र मे एक स्वच्छ सहस्त्र दल युक्त कमल का चिन्तन करे। इस समय इस कमल को इस प्रकार समझे कि यह कमल कर्पूर के समान श्वेत वर्ण का है। मेरे लौकिक गुरु के समान आकार वाले महाभाग गुरुदेव इस आसन पर विराजमान हैं इनका मुख बहुत प्रसन्न है। नाना प्रकार के आभूषण इनकी शोभा बढा रहे हैं। इनकी शक्ति इनके साथ है। इस प्रकार ध्यान के बाद विद्वान् लोग नमस्कार करके कुण्डलिनी मे देवी का ध्यान करे। यही देवी प्रथम प्रयाण में अर्थात् जब ब्रह्म रन्ध्र पर पधार चुकी थी, उस समय इनका रूप एक प्रकाश पुंजमय था। फिर कुण्डलिनी मे पधारने पर यह देवी भगवती अमृत-स्वरूपिणी बन गई हैं। अन्त पद मे, अर्थात् सुषुम्ना नाडी मे विराजते समय यही परम शक्ति एक अबला स्त्री के रूप मे दर्शन दे रही है। इनका स्वरूप परम आनन्दमय है। अत मैं इनकी शरण ग्रहण करता हू।

हे राजन् ! इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् कुण्डलिनी शिखा के मध्य मे मुझ सच्चिदानन्द स्वरूपिणी भगवती का ध्यान करे। ये सभी क्रियाए सध्यावन्दन के अन्त मे पूर्ण करनी चाहियें। इसके पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मण को चाहिये कि मेरी प्रसन्नता के निमित्त अग्निहोत्र करे, अर्थात् अग्नि मे मेरे निमित्त औषधि डाले। आहुतिओ को डालने के पश्चात् अपने आसन पर बैठकर पूजा-सकल्प करे। पहले भूतशुद्धि करके फिर मातृ का न्यास करे। मातृ का न्यास मे 'र' इस माया बीज का उल्लेख आवश्यक है, अर्थात् पूजा मे यह न्यास प्रतिदिन अवश्य करे। मूलाधार मे हकार, हृदय मे रकार, भ्रूमध्य मे ईकार और मस्तक मे ह्रींकार का न्यास करे। तत्-तत् मन्त्रो के कथनानुसार अन्य सभी न्यासो को विधि पूर्वक सम्पन्न करे। इस क्रिया के करने के उपरान्त ऐसी कल्पना करे कि मेरे इस शरीर मे दिव्य पीठ है, जिसमे धर्म आदि सभी सत् कर्म मूर्तिमान् होकर एक साथ विराजमान रहते है। इस प्रकार की कल्पना करते हुए विद्वान् व्यक्तियो को मेरा ध्यान करना चाहिये। प्राणायाम के प्रभाव से मेरा हृदय रूपी कमल खिल उठा है और यह पचप्रेतासनमय है। इस दिव्य आसन पर भगवती महादेवी विराजमान है।

हे हिमालय ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदा शिव ये पाचो देवता पचमहाप्रेत कहलाते हैं और ये मेरे पादमूल मे स्थित रहते हैं, अर्थात् मेरे मच के ये चार पाद (पाये) है और फलक, पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश इन पाच भूतो तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया एव अतीत इन पाच अवस्थाओ के ये व्यवस्थापक हैं । मेरा चिन्तनमय रूप अव्यक्त है । मैं इन अवस्थाओ से सर्वथा दूर हूँ । शक्ति तन्त्र मे ब्रह्मा आदि देवताओ का विष्टर रूप मे परिणत होना प्रसिद्ध है । इस प्रकार सदा ध्यान करके मानसिक भोगो से, अर्थात् मानसिक भोगो की सामग्रियो से मेरी पूजा और जप आदि करने चाहिये । फिर मेरे निमित्त जप अर्पण करके अर्घ्य देने की व्यवस्था करे । सर्वप्रथम पूजा के सभी पात्र सामने रखे । पूजा मे काम आने वाली वस्तुओ को अस्त्रमन्त्र, अर्थात् ओम्फट इस मन्त्र का उच्चारण करके शुद्ध करे । दिग्वन्ध भी इसी मन्त्र से करके गुरुदेव को नमस्कार करे । फिर मेरी आज्ञा के अनुसार वाह्य पूजा की तैयारी करे ।

हे राजन् ! साधक के हृदय मे मेरी जो दिव्य मनोहर मूर्ति स्थान कर गई हो, उसी का वाह्य शरीर पर आह्वान करे । फिर वेद मन्त्रो द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये । फिर आसन, आह्वान, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान और वस्त्रदान आदि क्रमश सम्पन्न करे । फिर दो वस्त्र भगवती के लिए अर्पण करे और भूषणो से मूर्ति का शृङ्गार करे । सब प्रकार के गन्ध-पुष्प आदि यथा योग्य वस्तुए अपनी भक्ति के अनुसार भगवती को अर्पण करे । इसके पश्चात् यन्त्र मे लिखित अवान्तर देवताओ का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिये । यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन पूजा न कर सकता हो, तो वह शुक्रवार के दिन पूजा करने का नियम निश्चित रूप से बना ले ॥१८॥

मूलदेवी प्रभारूपा स्मर्तव्या अगदेवता ॥
तत्प्रभापटलव्याप्त त्रैलोक्य च विचिंतयेत् ॥१६॥

पुनरावृत्ति सहिता मूलदेवी च पूजयेत् ॥
गधादिभि सुगधैस्तु तथा पुष्पै सुवासितै ॥२०॥

नैवद्यैस्तर्पणैश्चैव तावूलैर्दक्षिणादिभि ॥
तोषयेन्मा त्वत्कृतेन नाम्ना साहस्त्रकेण च ॥२१॥

सर्व प्रथम मूलदेवी जी की भावना करे जोकि अग देवता स्वरूप है और परम–प्रकाशमयी है। इनका प्रकाश पुज सम्पूर्ण त्रिलोकी मे व्याप्त है। इस प्रकार चिन्तन करके आसन, पाद्य आदि उपचारो से अग देवताओ की पूजा करने के पश्चात् मूलदेवी स्वरूपा मुझ भगवती की पूजा करनी चाहिये। पुष्प, चन्दन, धूप, वस्त्र नैवेद्य, तर्पण ताम्बूल और दक्षिणा आदि से मुझे सन्तुष्ट करना चाहिये। आपके द्वारा रचित सहस्र नामो के उच्चारण से मैं बहुत प्रसन्न होती हू ।२१॥

कवचेनच सूक्तेनाह रुद्रेभिरिति प्रभो ।
देव्यथर्वशिरोमत्रैर्हृल्लेखोपनिषद्भवै ।२२॥

महाविद्यामहामत्रैस्तोषयेन्मा मुहुर्मुहु ।
क्षमापयेज्जगद्धात्री प्रेमार्द्रहृदयो नर ।२३॥

पुलकांकितसर्वांगैर्वाष्परुद्धाक्षिनि स्वन ।
नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मा मुहुर्मुहु ।२४॥

वेदपारायणैश्चैव पुराणै सकलैरपि ।
प्रतिपाद्या यतोऽह वै तस्मात्तैस्तोषयेत्तु माम् ।२५॥

निज सर्वस्वमपि मे सदेह नित्यशोऽर्पयेत् ।
नित्यहोम तत कुर्याद्ब्रह्मणाद्धश्च सुवासिनी ।२६॥

वटुकान्पामरानन्यान्देवीवुद्धया तु भोजयेत् ।
नत्वा पुन स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत् ।२७॥

सर्व हृल्लेखया कुर्यात्पूजन मम सुव्रत ।
हृल्लेखा सर्वमत्राणा नासिका परमा स्मृता ।२८॥

हृल्लेखदर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिंबिता ।
तस्माद्धृल्लेखया दत्त सर्वमंत्रैः समर्पितम् ।२९॥

गुरु सपूज्य भूषाद्यै कृतकृत्यत्वमावहेत् ।
य एव पूजयेद्देवी श्रीमद्भुवनसुदरीम् ।३०॥

न तस्य दुर्लभ किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ।
देहाते तु मणिद्वीप मम यात्येव सर्वथा ।३१॥

ज्ञेयो देवी स्वरूपोऽसौ देवा नित्य नमति तम् ।
इति ते कथित राजन्महादेव्या प्रपूजनम् ।३२॥

विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपत ।
कुरु मे पूजन तेन कृतार्थस्त्व भविष्यसि ॥३३॥

इद तु गीताशास्त्र मे नाशिष्याय वदेत्क्वचित् ।
नाभक्ताय प्रदातव्य न धूर्ताय च दुर्हृदे ।३४॥

एतत्प्रकाशन मातुरुद्घाटनमुरोजयो ॥
तस्मादवश्य यत्नेन गोपनीयमिद सदा ।३५॥

देय भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ।
सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ।३६॥

श्राद्धकाले पठेदेतद्ब्राह्मणाना समीपत ।
तृप्तास्तत्पितर सर्वे प्रयाति परम पदम् ।३७॥

हे राजन् ! कवच तथा अह रुद्रेभि इस सूक्त के द्वारा देव्यथर्वशीर्ष के मन्त्रो और महाविद्यासज्ञक महामन्त्रो से मुझे बार बार प्रसन्न करे। इसके पश्चात् पूजक को चाहिये कि वह अपना हृदय प्रेम रस से स्निग्ध करके अपराध क्षमापण स्तोत्रो द्वारा मेरी प्रार्थना करे। उस समय सम्पूर्ण अगो के पुलकित होने के कारण प्रेमवश आँखो मे आसू आने तक

हृल्लेखदर्पणे नित्यमह तत्प्रतिबिंबिता ।
तस्माद्धृल्लेखया दत्त सर्वमत्रै. समर्पितम् ।२९।।

गुरु सपूज्य भूपाद्यै कृतकृत्यत्वमावहेत् ।
य एव पूजयेद्देवी श्रीमद्भुवनसुदरीम् ।३०।।

न तस्य दुर्लभ किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ।
देहाते तु मणिद्वीप मम यात्येव सर्वथा ।३१।।

ज्ञेयो देवी स्वरूपोऽसौ देवा नित्य नमति तम् ।
इति ते कथित राजन्महादेव्या प्रपूजनम् ।३२।।

विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपत ।
कुरु मे पूजन तेन कृतार्थस्त्व भविष्यसि ।।३३।।

इद तु गीताशास्त्र मे नाशिष्याय वदेत्क्वचित् ।
नाभक्ताय प्रदातव्य न धूर्ताय च दुर्हृदे ।३४।।

एतत्प्रकाशन मातुरुद्घाटनमुरोजयो ।।
तस्मादवश्य यत्नेन गोपनीयमिद सदा ।३५।।

देय भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ।
सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ।३६।।

श्राद्धकाले पठेदेतद्ब्रह्मणाना समीपत ।
तृप्तास्तत्पितर सर्वे प्रयाति परम पदम् ।३७।।

हे राजन् ! कवच तथा अह रुद्रेभि इस सूक्त के द्वारा देव्यथर्वशीर्ष के मन्त्रो और महाविद्यासज्ञक महामन्त्रो से मुझे बार बार प्रसन्न करे। इसके पश्चात् पूजक को चाहिये कि वह अपना हृदय प्रेम रस से स्निग्ध करके अपराध क्षमापण स्तोत्रो द्वारा मेरी प्रार्थना करे। उस समय सम्पूर्ण अगो के पुलकित होने के कारण प्रेमवश आँखो मे आसू आने तक

तत स्कद समुद्भूतस्तारकस्तेन पातित ॥
समुद्रमथने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप ॥४०॥

तत्र देवै स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् ॥
तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा तत ॥४१॥

वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ॥
इति ते कथित राजन् देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥४२॥

गौरीलक्ष्म्यो समुद्भूतिविषय सर्वकामदम् ॥
न वाच्य त्वेतदन्यस्मै रहस्य कथित यत ॥४३॥

गीता रहस्यभूतेय गोपनीया प्रयत्नत ॥
सर्वमुक्त समासेन यत्पृष्ट तत्त्वयाऽनघ ॥४४।

पवित्र पावन दिव्य किं भूय श्रोतुमिच्छसि ॥४४½॥

व्यास जी बोले — हे राजन् परीक्षित ? इस प्रकार भगवती जगदम्बा स्वय हिमालय को उपदेश देकर अन्तर्धान हो गयी । सम्पूर्ण देवता उनके दर्शन प्राप्त करके आनन्दमग्न हो गये । इसके अनन्तर भगवती सती ने हिमालय के घर जन्म लेकर हेमवती देवी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की । यह वही देवी हेमवती है जो पहले गौरी नाम से पुकारी जाती थी । इसे भगवती भुवनेश्वरी जी ने शकर जी को सौप दिया । इस प्रकार शकर को समर्पित करने के अनतर स्वामी कार्तिकेय जी उत्पन्न हुए। उन्होने तारक नामक असुर का बध किया।

हे राजन् ! अब लक्ष्मी जी के पुन प्रकट होने का वर्णन भी बतलाया जाता है । पूर्व समय मे जिस समय समुद्र मथन हो रहा था, उस समय बहुत से रत्न निकले। उसी समय लक्ष्मी को प्रकट करने के लिए देवताओ ने आदर पूर्वक श्री भगवती जगदम्बा जी की स्तुति की । तब उन पर कृपा करने के निमित्त श्री भगवती देवी जी पुन लक्ष्मी रूप से प्रकट हो गयी । इसलिए देवताओ के अनुरोध से भगवती लक्ष्मी को विष्णु जी के साथ

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने महादेवी जी की पूजा का वर्णन आपको वतला दिया है। आपने इन विपयो पर भली भान्ति विचार करके अपने अधिकार के अनुसार मेरे पूजन मे सलग्न हो जाना। इस प्रकार इम पूजन के प्रभाव से आप कृतार्थ हो जाओगे।

उपर्युक्त यह विवेचन यह मेरा गीता शास्त्र कहलाता है। जो व्यक्ति मेरी आज्ञा न मानता हो, और मेरे प्रति उसे श्रद्धा न हो, उस धूर्त एव दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति के समक्ष इस गीता शास्त्र का विवेचन नही करना चाहिये। यदि कोई इस प्रकार के अनाधिकारी व्यक्ति के सामने मेरे इस उच्चकोटि के ब्रह्मविद्या स्वरूप गीता शास्त्र को वतलाता है, या प्रकट करता है, वह व्यक्ति ठीक उसी प्रकार का है जो अपनी माता के गोपनीय स्थानो को नग्न करके दिखा रहा हो। इसलिए इस गीता शास्त्र को विशेष रूप से यत्न पूर्वक सदा रहस्य युक्त समझकर गुप्त ही रखना आवश्यक है। जो मेरा भक्त हो और मेरी आज्ञा का पालन करने वाला हो, ऐसे ज्येष्ठ पुत्र को या शील और स्वभाव से सम्पन्न, देवी भक्ति से युक्त व्यक्ति को इसका उपदेश करना चाहिये।

श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणो के समीप वैठकर यदि इस गीता शास्त्र का पाठ किया जाये तो श्राद्ध कर्त्ता के समस्त पितर तृप्त हो कर परमपद को प्राप्त हो जाते है, अर्थात् इस गीता शास्त्र का पठन-पाठन पितरो की तृप्ति का भी एक बडा साधन है। पितरो के प्रसन्न होने पर सव देवता भी प्रसन्न हो जाते है। इसलिए गीता शास्त्र के पठन-पाठन से सव प्रकार के पितर, देवता एव साक्षात् भगवती जगदम्वा प्रसन्न हो जाती है। पितरो को एव उस मानव को परमपद प्राप्त कराने मे सहायक है। इस गीता शास्त्र का पाठ प्रत्येक कामना की पूर्ति कराने के अनन्तर मानव को मोक्ष प्राप्त कराने मे विशेप रूप से सहायक है ॥३७॥

॥ व्यास उवाच ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥
देवाश्च मुदिता सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ॥३८॥

ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा ॥
या गौरीति प्रसिद्धाऽऽसीद् दत्ता या शकराय च ॥३९॥

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने महादेवी जी की पूजा का वर्णन आपको वतला दिया है। आपने इन विषयो पर भली भान्ति विचार करके अपने अधिकार के अनुसार मेरे पूजन मे सलग्न हो जाना। इस प्रकार इस पूजन के प्रभाव से आप कृतार्थ हो जाओगे।

उपर्युक्त यह विवेचन यह मेरा गीता शास्त्र कहलाता है। जो व्यक्ति मेरी आज्ञा न मानता हो, और मेरे प्रति उसे श्रद्धा न हो, उस धूर्त एव दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति के समक्ष इस गीता शास्त्र का विवेचन नही करना चाहिये। यदि कोई इस प्रकार के अनाधिकारी व्यक्ति के सामने मेरे इस उच्चकोटि के ब्रह्मविद्या स्वरूप गीता शास्त्र को वतलाता है, या प्रकट करता है, वह व्यक्ति ठीक उसी प्रकार का है जो अपनी माता के गोपनीय स्थानो को नग्न करके दिखा रहा हो। इसलिए इस गीता शास्त्र को विशेप रूप से यत्न पूर्वक सदा रहस्य युक्त समझकर गुप्त ही रखना आवश्यक है। जो मेरा भक्त हो और मेरी आज्ञा का पालन करने वाला हो, ऐसे ज्येष्ठ पुत्र को या शील और स्वभाव से सम्पन्न, देवी भक्ति से युक्त व्यक्ति को इसका उपदेश करना चाहिये।

श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणो के समीप वैठकर यदि इस गीता शास्त्र का पाठ किया जाये तो श्राद्ध कर्त्ता के समस्त पितर तृप्त हो कर परमपद को प्राप्त हो जाते है, अर्थात् इस गीता शास्त्र का पठन-पाठन पितरो की तृप्ति का भी एक वडा साधन है। पितरो के प्रसन्न होने पर सब देवता भी प्रसन्न हो जाते हे। इसलिए गीता शास्त्र के पठन-पाठन से सब प्रकार के पितर, देवता एव साक्षात् भगवती जगदम्बा प्रसन्न हो जाती है। पितरो को एव उस मानव को परमपद प्राप्त कराने मे सहायक है। इस गीता शास्त्र का पाठ प्रत्येक कामना की पूर्ति कराने के अनन्तर मानव को मोक्ष प्राप्त कराने मे विशेप रूप से सहायक है ॥३७॥

॥ व्यास उवाच ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥
देवाश्च मुदिता सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ॥३८॥

ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु या ॥
या गौरीति प्रसिद्धाऽसीद् दत्ता या शंकराय च ॥३९॥

तत स्कद समुद्भूतस्तारकस्तेन पातित ॥
समुद्रमथने पूर्व रत्नान्यासुर्नराधिप ॥४०॥
तत्र देवै स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् ॥
तेपामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा तत ॥४१॥

वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ॥
इति ते कथित राजन् देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥४२॥
गौरीलक्ष्म्यो समुद्भूतिविषय सर्वकामदम् ॥
न वाच्य त्वेतदन्यस्मै रहस्य कथित यत ॥४३॥

गीता रहस्यभूतेय गोपनीया प्रयत्नत ॥
सर्वमुक्त समासेन यत्पृष्ट तत्त्वयाऽनघ ॥४४।
पवित्र पावन दिव्य कि भूय श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

व्यास जी बोले — हे राजन् परीक्षित ? इस प्रकार भगवती जगदम्बा स्वय हिमालय को उपदेश देकर अन्तर्धान हो गयी । सम्पूर्ण देवता उनके दर्शन प्राप्त करके आनन्दमग्न हो गये । इसके अनन्तर भगवती सती ने हिमालय के घर जन्म लेकर हेमवती देवी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की । यह वही देवी हेमवती है जो पहले गौरी नाम से पुकारी जाती थी । इसे भगवती भुवनेश्वरी जी ने शकर जी को सौप दिया । इस प्रकार शकर को समर्पित करने के अनतर स्वामी कार्तिकेय जी उत्पन्न हुए । उन्होने तारक नामक असुर का बध किया ।

हे राजन् ! अब लक्ष्मी जी के पुन प्रकट होने का वर्णन भी बतलाया जाता है । पूर्व समय मे जिस समय समुद्र मथन हो रहा था, उस समय बहुत से रत्न निकले । उसी समय लक्ष्मी को प्रकट करने के लिए देवताओ ने आदर पूर्वक श्री भगवती जगदम्बा जी की स्तुति की । तब उन पर कृपा करने के निमित्त श्री भगवती देवी जी पुन लक्ष्मी रूप से प्रकट हो गयी । इसलिए देवताओ के अनुरोध से भगवती लक्ष्मी को विष्णु जी के साथ

रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, अर्थात् देवताओ ने समुद्र मन्थन से उत्पन्न हुई भगवती लक्ष्मी को भगवान् विष्णु को समर्पित कर दिया। इस कारणविष्णु भगवान् का भी कल्याण हुआ।

इस प्रकार हे राजा परीक्षित ! देवी के महात्म्य का उत्तम वर्णन आपके समक्ष करदिया है। गौरी और लक्ष्मी की उत्पत्ति का यह प्रसग समस्त कामनाओ को पूर्ण करने वाला है। अन्य किसी साधारण व्यक्ति के समक्ष यह रहस्य प्रकट नही करना चाहिये, इसका कारण पूर्व बतला दिया है। रहस्य भूत यह गीता शास्त्र अत्यन्त गोपनीय है। हे निष्पाप राजन् ! आपने जो कुछ पूछा था, वह मैंने सक्षेप मे आपको बतला दिया। यह चरित्र स्वय पवित्र एव दूसरो को भी पवित्र करने वाला और दिव्य है। अब आप इससे अधिक क्या सुनना चाहते हो ? ॥४४½॥

इति श्रीदेवी–भागवत-महापुराणस्य सप्तमस्कन्धान्तर्गत
गीता शास्त्रे दशमोऽध्याय

देवी-इष्ट की महत्ता

या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्द्धिनी ॥
देवी भगवती तस्या पूजक परमद्युति ॥

इष्ट मे निष्ठा मानव धर्म का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति अपने इष्ट मे निष्ठा न रख कर मन को नाना प्रकार के धर्मों के मत-मतातरो मे डालकर ईश्वरीय सत्ता की उपासना करता है, वह मानव कदापि सासारिक कर्तव्यो के पालन मे भी समर्थ नही हो सकता। आध्यात्मिक क्रियाओ मे वह कैसे सफल हो सकता है ? आध्यात्मिक क्रियाए मन की सुव्यवस्था पर आधारित होती हैं। मन की एकाग्रता (एक स्थान पर) कर लेने से तदगीभूत सर्व-क्रियाकलाप नियन्त्रित हो जाते हैं। इष्ट मे निष्ठा मन एव उसकी क्रियाओ की अवस्थाओ को नियन्त्रित करने वाला पहला सोपान (सीढी) है।

पहली सीढी का श्रीगणेश ठीक न होने से मानव अपनी आध्यात्मिक उन्नति को चरम सीमा पर पहुँचने मे असमर्थ रहता है। अपने मार्ग पर चलता हुआ मानव कदापि अन्य-धर्मावलम्वी व्यक्तिओ के इष्ट मे हानि न होने दे और न ही उसे भिन्न २ धर्मों के अनुयायियो की समालोचना करनी चाहिये। वल्कि उसे तो सर्व प्राणियो की इष्ट धारणा मे जो ईश्वरीय ज्ञान की धारा है, इससे अपने इष्ट को और दृढ वनाना चाहिये। वह ही मानव अपनी इष्ट निष्ठा मे सफलता प्राप्त करता हुआ अपने इष्टमय भावो की धारा मे लीन होकर सासारिक एव आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

किसी व्यक्ति की इष्ट निष्ठा को भग करना न केवल उस मानव से धोखा है, वल्कि उस मानव की रचना करने वाली सर्व-शक्तिमयी सत्ता से भी धोखा करना है, जिससे नाना प्रकार के धर्मों एव उनके प्रवर्तको एव ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि देवताओ तथा अन्य ऋषि मुनि, सत, महात्मा, भक्त, गुरु आदि महानुभावो को इस ससार की लीला देखने का अवसर मिला है।

इष्ट निष्ठा से मानव के मन मे स्थिरता सम्पन्न होती है और वह स्थिरता ही साधक (उपासक) की भक्ति का मूल कारण बनती है। इसलिये जो व्यक्ति साधक बनना चाहता है, उसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि भिन्न २ धर्मो के भिन्न २ सम्प्रदाय आदि उसी सर्वशक्तिमयी, आद्याशक्ति एव प्रभु आदि शब्द वाच्य ईश्वर की महिमा के ही अमर रूपेण द्योतक है। इनकी अभिव्यक्ति मानव मे जिस समय किसी भी रूप मे सचार कर जाती है उसी समय वह मानव उस पथ, धर्म या मार्ग का अनुययी हो जाता है और अपनी साधना मे प्रयत्न करता है। उसमे निष्ठा रखने के लिए उसे सक्रिय रहना पडता है। अन्त मे भक्ति की लहर मे वह उस इष्ट के द्वारा परम-पिता परमात्मा एव सर्वशक्तिमयी आद्याशक्ति के अश को समझने मे भी समर्थ हो जाता है।

ईश्वरीय अनुराग भी उसी समय मानव मे उत्पन्न होता है, जब उस सर्वशक्तिमयी सत्ता की परम कृपा होती है। एक ईश्वरीय उपासक के उद्गार इस विषय मे इस प्रकार हैं —

नाम्नामकारि वहुधा निजसर्वशक्ति,
तत्रार्पिता, नियमित स्मरणे न काल ।
एतादृशी तव कृपा भगवत् ममापि,
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुराग ॥ (श्रीकृष्ण चैतन्य)

अर्थात् हे ईश्वर ! आपको लोग कितने नामो से पुकारते है ? लोगो ने भिन्न-भिन्न नामो मे आपको बाट सा दिया है, परन्तु फिर भी प्रत्येक नाम मे आपकी पूर्ण शक्ति विद्यमान है। इन सभी नामो से आप उपासक को प्राप्त हो सकते हो, यदि हृदय मे आपके प्रति एकान्तिक अनुराग रहे। इसके अतिरिक्त आप की उपासना का भी कोई निर्दिष्ट समय नही, जिस से मनुष्य को कोई कठिनाई हो। आपको प्राप्त करना इतना सहज होते हुए भी हे ईश्वर ! यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि आपके प्रति मेरा अनुराग नही हुआ।

उपासक मे केवल अनुराग की उत्पत्ति होना ही आवश्यक नही, वल्कि उसे यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि अन्य धर्म, सम्प्रदायो के तेजस्वी प्रवर्तको के प्रति उसके मन मे घृणा उत्पन्न न हो। वह निन्दा न करे और न कभी उनकी निन्दा सुनने का प्रयास करे।

वास्तविक दृष्टिकोण से देखने पर यद्यपि इस ससार मे ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो महान् उदार भावो से युक्त हो, एव दूसरे के गुण-दोपो का परीक्षण करना न चाहते हो और साथ ही मानव के प्रति अत्यन्त प्रेम भी रखते हो। कई बार ऐसा भी प्राय देखा जाता है कि उदार भावापन्न सम्प्रदाय भी अपने धर्म-आदर्श के प्रति प्रेम की गम्भीरता खो बैठते हैं। उनके लिए धर्म एक प्रकार के सामाजिक और राजनैतिक भावो मे रगी हुई सस्था के रूप मे ही रह जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग अपने सम्प्रदाय को भी सकीर्ण सा कर देते हैं। वैसे तो वे लोग भी सकीर्ण विचारो के होने के कारण अपने-अपने इष्ट के प्रति बडी भक्ति प्रदर्शित तो करते हैं, पर वे अपनी भक्ति का प्रत्येक क्षण अपने से भिन्न मतवालो के प्रति केवल घृणा प्रकट करने मे ही प्रयोग करतेहैं।

यह मानव की भलाई मे होता यदि ईश्वर की दया से यह ससार ऐसे लोगो से भरा होता, जो परम उदार और साथ ही गम्भीर प्रेम सम्पन्न होते। अत्यन्त खेद से कहना पडता है कि ऐसे उच्च व्यक्ति इस ससार मे बहुत थोडे है। इस कमी की पूर्ति निमित्त बहुत से लोगों को ऐसे उच्च आदर्श मे शिक्षित किया जा सकता है, जिससे मानव मे मानव के प्रति प्रेम की गम्भीरता और उदारता की भावना का अपूर्व सामजस्य हो। ऐसा करने की क्रिया या उपाय को ही इष्ट निष्ठा कहा जाता है। यह इष्ट निष्ठा मानव की सर्वतोमुखी प्रतिभा एव उन्नति की द्योतक है।

भिन्न भि न धर्मो के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय मनुष्य जाति के सम्मुख केवल एक-एक आदर्श रखते है, परन्तु वेदान्त धर्म मे तो इस ईश्वरीय सत्ता की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के मार्ग खोल दिये हैं और मनुष्य जाति के सम्मुख नए-नए आदर्श भी उपस्थित कर दिये हैं। इन आदर्शो मे से प्रत्येक आदर्श उस ईश्वर या अनन्त स्वरूपा शक्ति की ही एक-एक अभिव्यक्ति है। मानव के कल्याणार्थ वेदान्त शास्त्र मोक्षार्थी नरनारियो को वे सब भिन्न-भिन्न मार्ग दिखा देता है, जो अतीत और वर्तमान मे तेजस्वी ईश्वरीय सन्तानो या अन्य तद्रूपमय अवतारो द्वारा मानव जीवन की वास्तविकताओ की कठोर चट्टानो से काटे गये हैं। ये वेदान्तीय भाव सर्वोच्च भावनाओ से ओत-प्रोत होने के कारण न केवल मानव जाति के लिए ही सीमित हैं, बल्कि ये तो भविष्य मे होने वाली

मानव जाति का भी उस सत्य और आनन्द के धाम मे स्वागत करते है, जहा मनुष्य की आत्मा मायाजाल से मुक्त होकर सम्पूर्ण स्वाधीनता और अनन्त आनन्द मे विभोर हो कर रहती है।

उपर्युक्त तथ्यो से सिद्ध है कि इष्ट निष्ठा का यह पथ-प्रदर्शन भक्ति योग मे मानव को अग्रेसर करता है। यह भक्ति योग मानव को इस विषय पर विशेष निर्देश देता है कि वह ईश्वरीय सत्ता की प्राप्त के भिन्न-भिन्न भागो मे से किसी के प्रति भी घृणा न करे और न ही मत-मतान्तरो की अलोचना करे। इष्ट सम्पन्न मानव का यह सर्वप्रथम कर्तव्य हो जाता है कि वह सब प्रकार के मत-मतान्लरो की सत्ता के अस्तित्व को उदार भाव से समझे और अन्त मे प्रत्येक मत-मतान्तर मे उसी ईश्वरीय सत्ता की झलक देखे।

वास्तविक दृष्टिकोण से यह हमारा आध्यात्मिक जीवन एक छोटे से पौधे की भान्ति है। यदि उसे सुरक्षित रखने की सुव्यवस्था न हो तो वह स्थिर नही रह सकता। इस लिए इस आध्यात्मिक जीवन को सुरक्षित रखने के लिए हमे इसकी प्रारम्भिक एव अपरिपक्व दशा मे ही इसकी तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये, इसे भावो और आदर्शो के सतत परिवर्तन आदि के लिए पूरी छूट नही होनी चाहिये, नही तो यह छोटे पौधे की भान्ति है, जिसके लिए वायु, जल, स्थान आदि का समुचित प्रबन्ध न होने से वह अपनी वृद्धि को सुव्यवस्थित रखने मे किसी नियन्त्रण के अभाव से शुष्क हो कर विनाश को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार यह मानव का आध्यात्मिक जीवन है, इसे सुरक्षित रखने के लिए नवीन पौधे की भान्ति पूर्वावस्था मे ही जितने उचित प्रयत्न किए जायेगे, उतना ही मानव जीवन पूर्ण समृद्धिशाली होकर अपने व्यक्तित्व को ऊचा उठाता हुआ अपने जीवन निर्वाह एव दूसरो की भलाई के लिए महान् फलदायी सिद्ध होता है।

वहुत से व्यक्ति धार्मिक उदारता के नाम पर अपने अ दर्शो को लगातार वदलते रहते है, इस प्रकार का परिवर्तन उनमे व्यर्थ की उत्सुकताओ का द्योतक है। वे सदा नई-नई वातो को सुनने के लिए और नई लीलाए देखने को लालायित रहते है। उनके लिए यह एक वीमारी सी प्रतीत देती है या नशे की सी झलक उनमे प्रतीत होने लगती है। क्षणिक

स्नायविक उत्तेजना के लिएही वे नई नई बातें सुनने के इच्छुक रहते हैं। जब इम प्रकार की उत्तेजना देने वाली बातो का प्रभाव उनके मन से नष्ट हो जाता है, तब वे दूसरे प्रकार की बातो को सुनने को तैयार हो जाते हैं। उनके लिए धर्म एक प्रकार के नशे की भान्ति है। यह परिवर्तनशीलता की अवस्था मानव मे उस धर्म, मत या पथ के अन्त की सूचक होती है।

धार्मिक उदारता सम्पन्न व्यक्तियो मे से कुछ व्यक्ति बहुत ऊचे आदर्श के होते हैं, और वे क्षणिक उत्तेजना से परिवर्तनशील विचारो के नही होते। प्रत्येक इष्ट सम्पन्न व्यक्ति को इसी प्रकार के ऊचे विचार एव आदर्श रखने चाहिये और अपने आपको मत-मतान्तरो की सीमा से कलुषित नही करना चाहिये। जो लोग क्षणिक उत्तेजनाप्रद विचारो से अपने आपको प्रभावित नही होने देते, वे ज्ञानपिपासु होकर सीपी की भान्ति मन्त्ररूप जलबिन्दु को पाकर सासारिक कार्यो मे क्षमता प्राप्त करते हुए साधना के अगाध समुद्र मे डूबे रहते है।

इस प्रकार के व्यक्ति ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति मे शीघ्र ही सफलता को प्राप्त करते हुए अपने आप को चरितार्थ कर लेते हैं। जैसे कि एक सीपी समुद्र के तल से उठकर स्वाति नक्षत्र के जल की बिन्दु लेने के लिए समुद्र के ऊपर आ जाती है और मुख को फैला कर जल की सतह पर तैरती रहती है। जब उसमे उस नक्षत्र के समय जल का कोई बिन्दु पड जाता है, तब वह मुह बन्द करके समुद्र की तल की ओर चली जाती है और फिर ऊपर नही उठती। इसी प्रकार तत्व ज्ञानी भी इष्ट की साधना करते हुए उसमे लीन रहते है। वे प्रत्येक सासारिक वस्तु जात मे उस ईश्वरीय सत्ता की ही झलक देखते हुए ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और अन्त मे उसी ईश्वरीय सत्ता से मिलने मे समर्थ हो जाते है।

जब एक सीपी अपने इष्ट बिन्दु स्वाति नक्षत्र के जल को प्राप्त करके उसे मोती मे परिणत कर देती है, तो क्या मानव का यह सर्व-प्रथम कर्त्तव्य नही हो जाता कि वह चाहे किमी भी इष्ट को अपनाये, उस इष्ट साधना द्वारा अपनी विचारधारा को इस सासारिक भावो की लहर से ऊचा रखता हुआ अपने आपको जल से परिवर्तित मोती की

भान्ति वहुमूल्य एव मानवता के लिए सदुपयोगी बनाता हुआ ईश्वरीय शक्ति के अश मे लीन होने की क्षमता रख सके।

इष्ट सम्पन्न मानव मे मन्त्र की साधना द्वारा भक्ति-पराभक्ति की उत्पत्ति होती है। यह ज्ञान रूपी वृक्ष का परम मूल है। इसकी उत्पत्ति से मनुष्य अपने आपको उस ज्ञान रूपी वृक्ष की शाखाओ से आच्छादित पाने लगता है। फिर वह ज्ञान रूपी वृक्ष मानव के चारो तरफ अपनी शाखाओ एव मूल को फैलाता हुआ उस व्यक्ति के धर्म सम्बन्धी क्षेत्र को भी घेर लेता है। इससे उस इष्ट सम्पन्न व्यक्ति को यह अनुभव होने लगता है कि उसका अपना ही इष्ट देवता नाना प्रकार के सम्प्रदायो मे न.ना प्रकार के रूपो एव नामो से सम्मानित हो रहा है।

इस प्रकार का ज्ञान मानव मे हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान, आदि सर्व धर्मो के मत-मतान्तरो के भेद-भाव को मिटा देता है। वह व्यक्ति प्रत्येक मानव मे अपने ज्ञान द्वारा उसी ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति करता है, जिस नाम या रूप को उसने अपनी इष्ट साधना मे अपनाया हो। इस प्रकार का ज्ञान साधक को पराशक्ति की लहर के उत्पन्न होने पर ही होता है, अन्यथा नही।

अब प्रश्न उठता है कि साधक को सब प्रकार के मत-मतान्तरो मे से किस देवी-देवता, सन्त, महात्मा, गुरु आदि को इष्ट मानकर ईश्वरीय आराधना करनी चाहिये ? इसके लिए इश्वरीय सत्ता के जो भिन्न-भिन्न रूप एव नाम है, उनमे से जिस रूप एव नाम को मानव अपनाना चाहे, उसे अपनाले। फिर उसी को लक्ष्य रखकर अपनी साधना को दृढ करता चला जाये। मन को प्रलोभन देने वाले अन्य ईश्वरीय रूपो मे न डाल कर अपने लक्ष्य की पूर्ति उसी से करे, क्योकि वह रूप जो उसने स्वीकृत किया है, उसी ईश्वरीय सत्ता का द्योतक है, उसे कार्यान्वित करना ही इष्ट साधना है।

कोई भी व्यक्ति हो, उसे अपना एक इष्ट अवश्य अपनाकर अपने जीवन का तन्तु समूह एक शलाका (सलाई) पर ही बुनना चाहिये। यदि ऐसा न किया जायेगा तो उस मानव का स्नायु मण्डल दृढ न होकर वडा ही कमजोर पड जायेगा और उसमे

भने का उपदेश देते हैं। गीता मे इसी सत्ता को वासुदेव के नाम से पुकारा अपने जीवन के सूत्र को एक शलाका (सलाइ) पर न बुन कर भिन्न-भिन्न पर बुनना या बुने हुए सूत्र को दूसरी सलाई पर उधेड कर बुनते हैं, उनका स्नायु मण्डल (Nervous System) कई बार सूत्र की तरह छिन्न-भिन्न होने की शका से युक्त रहता है। कई बार छिन्न-भिन्न होकर नाना प्रकार की भयकर व्याधियो का कारण बन जाता है।

मानव को इष्ट साधना पर विशेष ध्यान देते हुए ईश्वरीय सत्ता के उस रूप एव उस नाम पर ही ध्यान देना चाहिये, जिससे वह अन्त तक उसे पक्का करता हुआ पराभक्ति की लहर को देख सके। इस लहर मे प्रवेश पाने पर वह व्यक्ति उसी मे ईश्वरीय सत्ता के प्रत्येक अग को अनुभव करने लग जाता हैं। ऐसा इष्ट साधनासम्पन्न व्यक्ति अपने इष्ट बल द्वारा नाना प्रकार के कठिन कार्यो को करने मे भी विशेष सामर्थ्य रखता है और नाना प्रकार के असाध्य, कष्टसाध्य मानसिक एव शारीरिक आधि-व्याधियो को नष्ट करने मे बडी विचित्र सामर्थ्य रखने लग जाता है, क्योकि कल्याणाश की भावना होने के कारण उसमे सतोगुण की विशेष अभिवृद्धि इष्ट बल से हो जाती है।

उस व्यक्ति के सतोगुण द्वारा अन्य व्यक्तियो मे स्थित रजोगुण, तमोगुण आदि दोष एव शरीर मे स्थित अन्य दोष प्रभावित हो जाते है, इस कारण उनके उपद्रव भूत, काम, क्रोध, लोभ आदि एव अन्य रोग क्षय, कुष्ठ उन्माद आदि भी निरर्थक हो जाते हैं। सतोगुण कल्याण का अश है, इसलिए यह सतोगुण की धारा जहा बहेगी, वहा रोग की उत्पत्ति नही हो सकती। यदि किन्ही कष्टसाध्य, असाध्य रोगो का मनुष्य के शरीर पर प्रभाव हो भी जाय तो सतोगुण के अश की, उस द्वारा लहरजो कि इष्ट व्यक्ति द्वारा उस रोगी पर प्रसारित की गई हो, वे नष्ट हो जाते हैं।

क्योंकि —

सत्व कल्याणाशत्वात् न रोगोत्पादकम् ।

इसके अतिरिक्त यह सतोगुण प्रकाशक धर्म विशिष्ट भी है। जैसे प्रकाशयुक्त वस्तु से अन्धकार स्वय नष्ट हो जाता है और उसका पता नही चलता कि कहा चला गया, उसी प्रकार इस सतोगुण का प्रभाव

मानसिक अव्यवस्था शीघ्रता से ही प्रवेश करती चली जायेगी। जो मनुष्य पर बहुत अशो मे सीधा (Direct) पडता है और बहुत अशो मे गुप्त रूप से (Indirect) पडता है।

इस प्रकार के इष्टो मे से आद्याशक्ति, महालक्ष्मी, अमरशक्ति, भगवती, देवी आदि नामवाच्य देवी सत्ता का इष्ट ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है, क्योकि यही सत्ता सब प्रकार के देवताओ, सन्त महात्माओ, भक्त, गुरुजन आदि की परम जननी एव उनके ज्ञान का मूल स्त्रोत है।

दैवीय इष्ट सम्पन्न व्यक्ति अपनी साधना को जगत् जननी मा की अनुकम्पा से पूर्ण करने मे शीघ्र समर्थ रहता है। प्रत्येक माता अपने पुत्र की कार्य साधना मे उसे सामर्थ्यशील बनाती हुई अपने प्रेम का भाजन बनाती है। समय समय पर समुचित मार्ग का प्रदर्शन कराती हुई, उसे अपने ज्ञान की धारा से भी सिञ्चित करती रहती है। इसी प्रकार यह दैवीय शक्ति भी सारे विश्व को अपनी ज्ञानधारा से इस प्रकार सिञ्चित करती रहती है। जैसे—इस जगत्जननी आद्याशक्ति ने सब देवताओ मे प्रधान भगवान् विष्णु को ज्ञान दिया, जिससे वे देवताओ मे श्रेष्ठ माने गये।

सर्वं खल्विदमेवाह नान्यदस्ति सनातनम्। (दे० भा० १, १५, ५२)

यह सारा जगत् मैं ही हू, मेरे बिना दूसरी कोई अविनाशी वस्तु नही है, अर्थात् मैं ही सनातनी सत्ता हू। इस आधे श्लोक मे ही इतना ज्ञान विष्णु को दे दिया, जिससे विष्णु भगवान् इस देवी की सत्ता को समझने मे समर्थ हुए। वेदव्यास जी ने इसी आधे श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीमद्देवीभागवत की रचना कर डाली, जिसमे इसी देवी शक्ति को सनातन ब्रह्म तत्त्व सिद्ध कर दिया हे। उपनिषद् भी इसे ब्रह्म के नाम से पुकारते है जैसे —

'सर्वं खल्विद ब्रह्म' (छान्दोग्य० ३, १४, १)

अर्थात् —यह सब निश्चय ही ब्रह्महै। इस प्रकार उपनिषद् श्री भगवती देवी की ही ब्रह्म रूप से व्याख्या करते हैं और ब्रह्म को ही देवी रूप सम-

है, । जैसे—

वहूना जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मा प्रपद्यते ।
वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ॥गीता७, १९॥

इस उपदेश मे सव कुछ वासुदेव को ही माना गया है, यहा वासुदेव ही ब्रह्म है। इसी प्रकार अर्जुन को उपदेश करते हुए श्री कृष्ण ने अपने आपको ही इस श्लोक मे सव कुछ कहा है —

तपाम्यहमह वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥
अमृत चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ (गीता ९, १९,)

इससे अतिरिक्त अन्य श्लोक मे भी अपने आप को ही सर्वस्व माना है, और यह भी सिद्ध किया है कि यह सारा विश्व सूत्र मे रत्नो की भाँति मेरे से ही ओत प्रोत है। जैसे —

मत्त परतर नान्यत्किंचिदस्ति धनजय ॥
मयि सर्वमिद प्रोत सूत्रे मणिगणा इव ॥गीता ७, ७॥

अर्थात्, मुझसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही। इससे सिद्ध है कि यही सत्ता भिन्न २ नामो और रूपो से एव भिन्न २ कार्यो से भिन्न भिन्न प्रतीत होती है। वास्तव मे ब्रह्म और देवी सत्ता मे कोई अन्तर नही। इसलिए भगवती ने ब्रह्मा जी से इसी विषय का स्पष्टीकरण किया है —

सदेकत्व न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमह याऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥

आवयोरन्तर सूक्ष्म यो वेद मतिमान् हि स ।
विमुक्त स तु ससारान्मुच्यते नात्र सशय ॥
(दे० भा०३, ६, २, ३

"मैं और ब्रह्म एक ही हैं। मुझमे और ब्रह्म मे किंचिन्मात्र भी भेद नही है। जो वह है, वही मैं हूँ और जो मैं हू, वही वह है। वुद्धि के

भ्रम से भेद प्रतीत हो रहा है। जो बुद्धिमान् पुरुष हम लोगो के सूक्ष्म भेद को जानता है, वही मुक्त है। इस ससार-सागर से उसके मुक्त होने मे कुछ भी सदेह नही है।"

सर्वमेवाहमित्येव निश्चय विद्धि पद्मज ॥

नून सर्वेषु देवेषु नानानामधराम्यहम् ।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ॥

गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ।
वारुणी चाथ कौवेरी नारसिंही च वासवी ॥

जले शीतं तथा वह्नावौष्ण्य ज्योतिर्दिवाकरे ।
निशानाथे हिम काम प्रभवामि यथा तथा ॥

(दे० भा० ३, ६, ११, १३, १४, १६)

ब्रह्मा जी मैं सब मे ही हूँ, इसे निश्चयपूर्वक जान लेना चाहिये। सम्पूर्ण देवताग्रो मे मैं विभिन्न नामो से विख्यात हू। यह—निश्चित बात है। मैं शक्तिरूप धारण करके पराक्रम करती हू। गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौवेरी, नारसिंही ग्रौर वासवी सभी मेरे ही रूप है। जल मे शीतलता, ग्रग्नि मे उष्णता, सूर्य मे ज्योति एव चन्द्रमा मे शीतलता का विस्तार करने की योग्यता जिस प्रकार बनी रहे, वैसी व्यवस्था करने मे ही स्वेच्छानुसार उनके भीतर प्रविष्ट होती हू।

इसके ग्रतिरिक्त इसी पक्ष की पुष्टि निम्नलिखित उद्धरण भी बडे जोर से करते हैं —

ग्रधुना शृणु विप्रेन्द्र दुर्गादिव्य महात्म्यकम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण पलायन्ते महाऽऽपद ॥

हे विप्रेन्द्र ? अब आप दुर्गा देवी के महत्त्व को सुनो। जिस दुर्गा शक्ति के महात्म्य के स्मृति मात्र से ही मनुष्य की बडी बडी विपत्तिए नष्ट हो जाती हैं।

एना न भजते यो हि तादृक् नास्त्येव कुत्रचित् ॥
सर्वोपास्या सर्वमाता शैवी शक्तिर्महाद्भुता ॥

ऐसा व्यक्ति ससार मे कोई नही जो शक्ति का उपासक न हो। उसे किसी न किसी रूप मे उसकी उपासना अवश्य करनी पडती है, क्योकि शक्ति सर्वोपास्या (सबके लिए उपासना योग्य) सर्वमाता (सबकी जननी) शैवीशक्ति (कल्याणदायिनी सत्ता) महाद्भूता (अद्भुत गुणो से युक्त) आदि नामो से पुकारी जाती है।

सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमन्तर्यामिस्वरूपिणी ॥
दुर्गसकटहन्त्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि ॥

सब की बुद्धि की अधिष्ठातृ शक्ति यही देवी है और सब मे विराजमान भी यही शक्ति है। भयकर सकट को दूर करने वाली, दुर्गा नाम से पृथ्वी पर विख्यात शक्ति यही है।

वैष्णवाना च शैवानामुपास्येय च नित्यश ॥
मूलप्रकृतिरूपा सा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥

सदा यही शक्ति विष्णु के उपासको के लिए एव शिव के उपासको के लिए उपास्या (उपासना योग्य) है। यही शक्ति मूलप्रकृति हे और यही शक्ति सृष्टि बनाने और उसे स्थायी एव नाश करने मे समर्थ है।

सर्वे देवा हरिब्रह्मप्रमुखा मनवस्तथा ॥
मुनयो ज्ञाननिष्ठाश्च योगिनश्चाश्रमास्तथा ॥

लक्ष्म्यादयस्तथा देव्य सर्वे ध्यायन्ति ता शिवाम् ॥
तदैव जन्मसाफल्य दुर्गास्मरणमस्ति चेत् ॥

सारे देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, मनु, मुनि, ज्ञान मे लगे हुए योगिजन और भिन्न-भिन्न आश्रमो मे स्थित व्यक्ति (ब्रह्मचारी, गृहस्थी, सन्यासी आदि) एव लक्ष्मी (समुद्र की पुत्री) सरस्वती, एव पार्वती आदि देविए इसी कल्याणदायिनी शक्ति का ध्यान करती हुई उपासना करती है। इन सबका जन्म इसीलिए सफल रहा क्योकि ये आद्याशक्ति, महा लक्ष्मी दुर्गा जी की स्मृति मे सदा लीन रही इसीलिए सम्पूर्ण विश्व मे सब के लिए उपासना योग्य यही आद्याशक्ति, महालक्ष्मी, अमरशक्ति, भगवती, देवी एव दुर्गा आदि नाम वाच्य शक्ति है। उसी व्यक्ति का इस ससार मे जन्म सफल है, जो व्यक्ति दुर्गा की स्मृति मे सलग्न रहे।

इस सर्वसम्मत देवी शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन अथर्व-वेदान्तर्गत देव्यथर्व शीर्ष मे किया है, जिसमे देवी को ही सर्वशक्ति सम्पन्न 'ब्रह्म' माना है, जिसका उपदेश भिन्न-भिन्न ग्रन्थ भिन्न-भिन्न नामो से करते हैं। एक समय का वृत्तान्त है कि सर्वदेवता एकत्रित होकर भगवती जी की सेवा मे उपस्थित होकर उनके मुख से ही देवी शक्ति के महत्त्व को पूछने लगे — जैसे —

ओम्—सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थु कासि त्व महादेवीति ॥१॥

ओम्—सभी देवता देवी के समीप गये और नम्रता से पूछने लगे,

हे महादेवि ! तुम कौन हो ? ॥१॥

साब्रवीत्-अह ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्त प्रकृतिपुरुषात्मक जगत्। शून्य चाशून्य च ॥२॥

उसने कहा—मैं ब्रह्मस्वरूपा हू। मुझसे प्रकृतिपुरुषात्मक सद्रूप और

असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है ॥२॥

अहमानन्दानानन्दौ। अह विज्ञानाविज्ञाने। अह ब्रह्माब्रह्मणी

वेदितव्ये। अह पचभूतान्यपचभूतानि। अहमखिल जगत् ॥३॥

मैं आनन्द और आनन्दरूपा हू। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हू। अवश्य जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हू, पचीकृत और अपचीकृत महाभूत भी मैं ही हू। यह सारा दृश्य जगत् मे ही हू ॥ ३ ॥

वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् ।अजाहमनजाहम्
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ॥ ४ ॥

वेद और अवेद मैं हू। विद्या और अविद्या भी मैं हू अजा और अनजा (प्रकृति और उससे भिन्न) भी मैं हू, नीचे, ऊपर, अगल-बगल मे भी मैं ही हू ॥४॥

अह रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि । अहमादित्यैरुत विश्वदेवै ।
अह मित्रावरुणावुभौ विभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥५॥

मैं रुद्रो और वसुओ के रूप मे सचार करती हू । मैं आदित्यो और विश्वे देवो के रूपो मे फिरा करती हू। मै मित्र और वरुण, इन्द्र एव अग्नि का और दोनो अश्विनीकुमारो का भरण-पोषण करती हू।

अह सोम त्वष्टार पूषण भग दधामि।
अह विस्णुमुरुविक्रम ब्रह्माणमुत प्रजापति दधामि ॥६॥

मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हू, त्रैलोक्य को आक्रान्त करने के लिए विस्तीर्ण पादक्षेप करने वाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापति को मैं ही धारण करती हू।

अह दधामिद्रविण हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते।
अह राष्ट्री सगमनी वसूना चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ॥
अह सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्त समुद्रे।
य एव वेद। स दैवी सम्पदामाप्नोति ॥७॥

देवो को उत्तम हवि पहुँचाने वाले और सोमरस निकालने वाले यजमान के लिए हविर्द्रव्यो से युक्त धन को मैं ही धारण करती हू । मैं सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी, उपासको को धन देने वाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्हो मे (यजन करने योग्य देवो मे) मुख्य हू । मैं आत्मस्वरूप धर आकाशादि का निर्माण करती हू । जो इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्तिको प्राप्त करता है ॥७॥

भक्ति के मूल सिद्धान्त एव पराभक्ति

इस जगत् मे भक्ति ही ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति का सरल एव सुगम उपाय है।

भक्ति-लाभ के उपायो तथा तथा साधनो के सम्बन्ध मे भगवान् रामानुज वेदान्त सूत्रो की टीका करते हुए कहते हे, "भक्ति की प्राप्ति विवेक, विमोक (दमन) अभ्यास, क्रिया (यज्ञादि), कल्याण (पवित्रता) अनवसाद (बल) और अनुद्धर्ष (उल्लास के विरोध) से होती है" उनके मतानुसार 'विवेक' का अर्थ यह है कि अन्य वातो के साथ ही हमे खाद्याखाद्य का भी विचार रखना चाहिये। उनके मत से, खाद्य वस्तु के अशुद्ध होने के दो कारण होते हैं —(१) जातिदोष अर्थात् खाद्य वस्तु का प्रकृतिगत दोष, जैसे लहसुन, प्याज आदि (२) आश्रय-दोष अर्थात् किसी अपवित्र वस्तु, जैसे धूल, केश आदि के सस्पर्श से होने वाला दोप। श्रुति कहती है, "आहार शुद्ध होने से चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होने से भगवान् का निरन्तर स्मरण होता है।"

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति ।

छान्दोग्य उपनिषद्, ७, २६

भक्तो के लिए खाद्याखाद्य का यह प्रश्न सदा ही वडा महत्त्व-पूर्ण रहा है। यद्यपि अनेक भक्त-सम्प्रदाय के लोगो ने इस विषय मे काफी तिल का ताड भी किया है पर तो भी इसमे एक बहुत बडा सत्य है। हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि साख्यदर्शन के अनुसार सत्त्व, रज और तम—जिनकी साम्यावस्था प्रकृति है और जिनकी वैषम्यावस्था से यह जगत् उत्पन्न होता है—प्रकृति के गुण और उपादान दोनो हे। अत एव इन्ही उपादानो से समस्त मानव-देह बनी है। इसमे से सत्य पदार्थ की प्रधानता ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए सवसे आवश्यक है। हम भोजन के द्वारा अपने शरीर मे जिन उपादानो को लेते हैं वे हमारे

मानसिक गठन पर विशेष प्रभाव डालते है। इसलिए हमे खाद्याखाद्य के विषय में विशेष सावधान रहना चाहिये। यह कह देना आवश्यक है कि अन्य विषयो के सदृश इस सम्बन्ध मे भी जो कट्टरता शिष्यो द्वारा उपस्थित कर दी जाती है उसका उत्तरदायित्व आचार्यो पर नही है।

वास्तव मे खाद्य के सम्बन्ध मे यह शुद्धाशुद्ध विचार गौण है। श्री शकराचार्य अपने उपनिषद् भाष्य मे इसी बात का दूसरे प्रकार से विवेचन करते है। उन्होने 'आहार' शब्द की, जिसका अर्थ हम बहुधा भोजन लगाते है, एक दूसरे ही प्रकार से व्याख्या की है। उनके मतानुसार "जो कुछ आहृत हो, वही आहार है। शब्दादि विषयो का ज्ञान भोक्ता अर्थात् आत्मा आत्मा के उपयोग के लिए भीतर आहृत होता है। इस विषयानुभूतिरूप ज्ञान की शुद्धि को आहार-शुद्धि कहते हैं। इसलिए आहार-शुद्धि का अर्थ है—आशक्ति, द्वेष और मोह से रहित होकर विषय का ज्ञान प्राप्त करना। अतएव यह 'ज्ञान आहार' शुद्ध हो जाने से उस व्यक्ति का सत्त्व पदाथ अर्थात् अन्त करण शुद्ध हो जाता है और सत्त्वशुद्धि हो जाने से अनन्त पुरुष के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान और अविछिन्न स्मृति प्राप्त हो जाती है।"

आह्रियते इति आहार। शब्दादिविषयविज्ञान भोक्तु भोगाय आह्रिते। तस्य विषयोपलब्धिलक्षणस्य विज्ञानस्य शुद्धि आहार-शुद्धि। रागद्वेषमोहदोषै असंसृष्टविषयविज्ञानम् इत्यर्थ। तस्याम् आहारशुद्धौ सत्या अत करणस्य सत्त्वस्य शुद्धि नैर्मल्य भवति। सत्त्वशुद्धौ च सत्या यथावगते भूतात्मनि ध्रुवा अवच्छिन्ना स्मृति अविस्मरण भवति। —छान्दोग्य उपनिषद् शाकरभाष्य ७, २६, २,

ये दो व्याख्याए ऊपर से चाहे विरुद्ध प्रतीत होती हैं परन्तु फिर भी दोनो सत्य और आवश्यक हैं। सूक्ष्म शरीर अथवा मन का सयम स्थूल शरीर के सयम से निश्चय ही श्रेष्ठ है, परन्तु साथ ही साथ सूक्ष्म के सयम के लिए स्थूल का भी सयम परमावश्यक हैं। इसलिए आरम्भिक दशा में साधक को आहारसम्बन्धी उन सब नियमो का विशेष रूप

से पालन करना चाहिए, जो उसको गुरु-परम्परा से चले आ रहे हैं। परन्तु आजकल हमारे अनेक सम्प्रदायो मे इस आहारादि विचार की इतनो बढा चढी है, अर्थहीन नियमो की इतनी पावन्दी है कि उन सम्प्रदायो ने मानो धर्म को रसोईघर मे ही सीमित कर रखा है। उस धर्म के महान् तथ्य वहा से बाहर निकल कर कभी आध्यात्मिकता के भानु-प्रकाश मे जगमगा सकेगे, इसकी कोई सम्भावना नही।

इस प्रकार का धर्म एक विशेष प्रकार का कोरा जडवाद है। वह न तो ज्ञान हैं, न भक्ति और न कर्म वह एक प्रकार का पागलपन सा जो लोग खाद्याखाद्य के इस विचार को ही जीवन का सार कर्तव्य समझ बैठे हैं, उनकी गति ब्रह्मलोक मे न होकर पागलखाने मे होनी ही अधिक सम्भव है। अतएव यह युक्ति-युक्त प्रतीत होता है कि खाद्याखाद्य का विचार मन की स्थिरतारूप उच्चावस्था लाने मे विशेष रूप से आवश्यक है। अन्य किसी भी तरह यह स्थिरता इतने सहज ढग से प्राप्त हो नही सकती।

उसके बाद है 'विमोक' अर्थात् इन्द्रियनिग्रह-इन्द्रियो को विषयो की ओर जाने से रोकना और उनको वश मे लाकर अपनी इच्छा के अधीन रखना। इसे धार्मिक साधना की नीव ही कह सकते हैं।

फिर आता है 'अभ्यास' अर्थात् आत्मसयम और आत्मत्याग का अभ्यास। हम लोग आत्मा मे परमात्मा का कितने अद्‌भुत ढग से अनुभव और कितने गम्भीर भाव से उपभोग कर सकते है, इसकी भी क्या कोई सीमा है ? पर साधक के प्रयत्न से और प्रवल सयम के अभ्यास बिना यह किसी भी तरह कार्यरूप मे परिणत नही किया जा सकता। "मन मे सदा प्रभु का ही चिन्तन चलता रहे।" पहले पहल यह बात बहुत कठिन मालूम होती है। पर अध्यवसाय के साथ लगे रहने पर इस प्रकार के चिन्तन की शक्ति धीरे-धीरे बढती जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता मे कहते है —

अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते। गीता, ६, ३५

"हे कौन्तेय, अभ्यास और वैराग्य से यह प्राप्त होता है।"

उसके बाद है क्रिया अर्थात् यज्ञ। पच महायज्ञो का नियमित रूप से अनुष्ठान करना होगा।

'कल्याण' अर्थात् पवित्रता ही एकमात्र ऐसी भित्ति है, जिस पर सारा भक्ति प्रासाद खडा है। वाह्य शौच और खाद्याखाद्य-विचार ये दोनो सर है, पर अन्त शुद्धि बिना उनका कोई मूल्य नही। रामानुज ने अन्त शुद्धि के लिए निम्निलिखित गुणो को उपायस्वरूप वतलाया हैं — (१) सत्य, (२) आर्जव अर्थात् सरलता, (३) दया अर्थात् नि स्वार्थ परोपकार, (४) दान, (५) अहिंसा अर्थात् मन, वचन और कर्म से किसी की हिंसा न करना, (६) परद्रव्यलोभ, वृथा चिन्तन और दूसरे द्वारा किए गए अनिष्ट आचरण के निरन्तर चिन्तन का त्याग। इन गुणो मे से अहिंसा विशेप ध्यान देने योग्य हैं। सब प्राणियो के प्रति अहिंसा का भाव हमारे लिए परमावश्यक है। इसका अर्थ यह नही कि हम केवल मनुष्यो के प्रति दया का भाव रखे और छोटे जानवरो को निर्दयता से मारते रहे, और न यही—जैसा कुछ लोग समझते है — कि हम कुत्ते और बिल्लियो की तो रक्षा करते रहे, चीटियो को शक्कर खिलाते रहे, पर इधर, जैसा बने वैसा, अपने मानब वन्धुओ का गला काटने के लिए विना किसी झिझक के तैयार रहे।

यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि ससार मे जितने सुन्दर-सुन्दर भाव हैं, यदि देश काल और पात्र का विचार न करते हुए, आखे बन्द कर उनका पालन किया जाय, तो वे स्पष्ट रूप से दोष बन जाते है। कुछ धार्मिक सम्प्रदायो के मैले-कुचैले साधु इस विचार से कि कही उनके शरीर की जुए आदि मर न जाए, नहाते तक नही। परन्तु उन्हे इस वात का कभी ध्यान भी नही आता कि कि ऐसा करने से वे दूसरो को कितना कष्ट देते है और कितनी वीमारिया फैलाते हैं। वे जो भी हो पर कम से कम वैदिक धर्मावलम्बी तो नही है।

ईर्ष्या का अभाव - अहिंसा की कसौटी है। कोई व्यक्ति भले ही क्षणिक आवेश मे आकर अथवा किसी अन्धविश्वास से प्रेरित हो या पुरोहितो के छक्के-पजे मे पड कर कोई भला काम कर डाले, अथवा खासा दान दे डाले, परन्तु नवजाति का सच्चा प्रेमी तो वह है, जो किसी के प्रति ईर्ष्या भाव नही रखता। वहुधा देखा जाता है कि ससार मे जो वडे मनुष्य कहे जाते हैं, वे अक्सर एक दूसरे के प्रति केवल थोडे

से नाम, कीर्ति या चादी के चन्द टुकडो के निए ईर्ष्या करने लगते हैं। जब तक यह् ईर्ष्या भाव मन मे रहता है, तव तक अहिंसा-भाव मे प्रतिष्ठित होना बहुत दूर की वात है।

गाय मास नही खाती, और न भेड ही। तो क्या वे बहुत वडे योगी हो गये, अहिंसक हो गये ? ऐरा-खैरा भी कोई विशेष चीज खानी छोड सकता है। पर जिस प्रकार घास-फूस खाने वाले जानवरो को कोई विशेष उन्नत नही कहा जा सकता, उसी प्रकार वह भी कोई खाद्य विशेप त्याग देने से ही ज्ञानी या उन्नत स्वभाव का नही हो जाता।

जो मनुष्य निर्दयता के साथ विधवाओ और अनाथ बालक-बालिकाओ को ठग सकता है, जो थोडे से घन के लिए जघन्य से जघन्य कृत्य करने से भी नही हिचकता, वह तो पशु से भी गया बीता है। फिर चाहे वह घास खाकर ही क्यो न रहता हो।

जिसके हृदय मे कभी भी किसी के प्रति अनिष्ट विचार तक नही आता, जो अपने बडे से बडे शत्रु की भी उन्नति पर भी आनन्द मनाता है, वही वास्तव मे भक्त है, वही योगी है और वही सबका गुरु है। फिर भले ही वह प्रतिदिन शूकर-मास ही क्यो न खाता हो।

हमे इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि वाह्य क्रियाए आन्तरिक शुद्धि के लिए सहायक मात्र है। जब वाह्य कर्मो के साधन मे छोटी-छोटी बातो का पालन करना सम्भव न हो, तो उस समय केवल अन्त शौच का अवलम्बन करना श्रेयस्कर है। पर धिक्कार है उस व्यक्ति को, जो धर्म के सार को तो भूल जाता है और अभ्यासवश वाह्य अनुष्ठानो को ही कस कर पकडे रहता है तथा उन्हें किसी तरह छोडता नही। इन वाह्य अनुष्ठानो की उपयोगिता बस वही तक है, जब तक वे आध्यात्मिक जीवन के द्योतक नही रह जाते, तो बिना किसी हिचकिचाहट के उनको नष्ट कर देना चाहिये।

भक्तियोग की प्राप्ति का एक और साधन है 'अनवसाद अर्थात् वल। श्रुति कहती है —बल हीन व्यक्ति आत्मा लाभ नही कर सकता।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य । —मुण्डकोपनिपद् ३,

श्रुति कहती है, "बलहीन व्यक्ति आत्मलाभ नही कर सकता।

इस दुर्बलता का तात्पर्य है— शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की दुर्बलताए। 'बलिष्ठ, कृश-शरीर तथा जराजीर्ण व्यक्ति क्या साधना करेगा ? शरीर और मन मे जो अद्भुत शक्तिया निहित हैं, किसी योगाभ्यास के द्वारा यदि वे थोडी सी जाग्रत हो गई, तो दुर्बल व्यक्ति तो बिल्कुल नष्ट हो जायगा। "युवा, स्वस्थ्यकाय, सबल" व्यक्ति ही सिद्ध हो सकता है। अत जो भक्त होने का इच्छुक है, उसे सबल और स्वस्थ होना चाहिये।

अत्यन्त दुर्बल व्यक्ति यदि कोई योगाभ्यास आरम्भ कर दे, तो सभव है, वह किसी आधि व्याधि से ग्रस्त हो जाय, अथवा अपना मानसिक बल ही खो बैठे। जान बूझकर शरीर को दुर्बल कर लेना आध्यात्मिक अनुभूति के लिए कोई अनुकूल व्यवस्था नही है।

दुर्बल चित्त व्यक्ति भी आत्मलाभ नही कर सकता। जो मनुष्य भक्त होने का इच्छुक है, उसे सदैव प्रसन्न चित्त रहना चाहिये। पाश्चात्य देशो मे धार्मिक व्यक्ति वह माना जाता है जो कभी मुस्कराता नही, जिसके मुख पर सर्वदा विषाद की रेखा बनी रहती है और जिसकी सूरत लम्बी और जबडे बैठे से होते हैं। ऐसे कृश शरीर और लम्बी सूरत वाले लोग तो किसी हकीम की देख-भाल की चीजे है, वे योगी नही हैं।

प्रसन्नचित्त व्यक्ति ही अध्यवसायशील हो सकता है। दृढ सकल्पवाला व्यक्ति हजारो कठिनाइयो मे से भी अपना रास्ता निकाल लेता है। इस माया जाल को काट कर अपना रास्ता बना लेना सबसे कठिन कार्य है, और यह केवल प्रबल इच्छाशक्तिसम्पन्न पुरुष ही कर सकते हैं।

परन्तु साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि मनुष्य कही अत्यधिक आमोद मे मत्त न हो जाय। यही 'अनुद्धर्ष' है। अत्यन्त हास्य-कौतुक हमे गम्भीर चिन्तन के अयोग्य बना देता है। उससे मानसिक शक्ति व्यर्थ ही क्षीण हो जाती है। इच्छा-शक्ति जितनी दृढ होगी, मनुष्य विभिन्न भावो के उतना ही कम वशीभूत होगा।

अत्यधिक आमोद उतना ही बुरा है, जितना गम्भीर उदासी का भाव। जब मन सामंजस्यपूर्ण और शांत रहता है, तभी सब प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति सम्भव है।

इन्हीं सब साधनों द्वारा क्रमश ईश्वर-भक्ति का उदय होता है।

पराभक्ति :-

पराभक्ति से त्याग वृत्ति का उदय होता है उसके उदय से मनुष्य अपनी शक्ति को सुरक्षित रखने मे समर्थ रहता है क्योकि मानव को उस समय ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि नही सताते।

सब प्रकार की साधनाओ का उद्देश्य है-आत्मशुद्धि। नाम-जाप कर्मकाण्ड, प्रतीक प्रतिमा आदि केवल आत्मशुद्धि के लिए हैं। पर शुद्धि की इन सब साधनाओ मे त्याग ही सबसे श्रेष्ठ है। इसके बिना कोई भी पराभक्ति के क्षेत्र मे प्रवेश नही कर सकता। त्याग की बात सुनते ही बहुत से लोग डर जाते है। पर इसके बिना किसी प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नही। इसी प्रकार के योग मे यह त्याग आवश्यक है। यह त्याग ही सारी आध्यात्मिकता का प्रथम सोपान है, उसका सार है-यही वास्तविक धर्म है।

जब मानवात्मा ससार की समस्त वस्तुओ को दूर फैंक, गम्भीर तत्वो के अनुसन्धान मे लग जाती है, जब वह समझ लेती है कि वह देह रूप जड मे बद्ध होकर स्वय जड हुई जा रही है और क्रमश विनाश की ओर ही बढ रही है और ऐसा समझकर जब वह जड पदार्थ से अपना मु ह मोड लेती है, तभी त्याग आरम्भ होता है, तभी वास्तविक आध्यात्मिकता की नीव पडती है।

कर्मयोगी सारे कर्मफलो का त्याग करता है। वह जो कुछ कर्म करता है, उसके फल मे वह आसक्त नही होता। वह ऐहिक अथवा पारत्रिक किसी प्रकार के फलोपभोग की परवाह नही करता। राजयोगी जानता है कि सारी प्रकृति का लक्ष्य आत्मा को भिन्न-भिन्न प्रकार के सुख-दु खात्मक अनुभव प्राप्त करना है, जिसके फलस्वरूप आत्मा यह जान ले कि वह प्राकृति से नित्य पृथक् और स्वतन्त्र है।

मानवात्मा को यह भली-भान्ति जान लेना होगा कि वह नित्य आत्मस्वरूप हैं और भूतो के साथ उसका सयोग केवल सामयिक—क्षणिक है। राजयोगी प्रकृति के अपने नानाविध सुख-दु खो के अनुभवो से

वैराग्य की शिक्षा पाता है। ज्ञानयोगी का वैराग्य सबसे कठिन है, क्योंकि आरम्भ से ही उसे यह समझ लेना पडता है कि यह ठोस दिखने वाली प्रकृति निरी मिथ्या है।

उसे यह समझ लेना पडता है कि प्रकृति मे जो कुछ भक्ति का विकास दिखता है, वह सब आत्मा की ही शक्ति है, प्रकृति की नही। उसे आरम्भ से ही यह जान लेना पडता है कि सारा ज्ञान और अनुभव आत्मा मे ही है, प्रकृति मे नही। उसे तो केवल विचारजन्य धारणा के बल से एकदम प्रकृति के सारे बन्धनो को छिन्न-भिन्न कर डालना पडता है। प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थो की ओर वह देखता तक नही, वे सब उडते हुए दृश्यो के समान उसके सामने से गायब हो जाते है। वह स्वय कैवल्यपद मे अवस्थित होने का प्रयत्न करता है।

सब प्रकार के वैराग्यो मे भक्तियोगी का वैराग्य सबसे स्वाभाविक है। उसमे न कोई कठोरता है, न कुछ छोडना पडता है, न हमे अपने आपसे कोई चीज छोडनी पडती है, और न बलपूर्वक किसी चीज से हमे अपने आप को अलग ही करना पडता है। भक्त का त्याग तो अत्यन्त सहज और स्वाभाविक होता है। इस प्रकार का त्याग, बहुत कुछ विकृत रूप मे, हम प्रतिदिन अपने चारो ओर देखते है। उदाहरणार्थ एक मनुष्य एक स्त्री से प्रेम करता है। कुछ समय बाद वह दूसरी स्त्री से प्रेम करने लगता है और पहली स्त्री को छोड देता है। वह पहली स्त्री धीरे धीरे उसके मन से पूर्णतया चली जाती है और उस मनुष्य को उसकी याद तक नही आती-उस स्त्री का अभाव तक उसे अब अनुभव नही होता।

एक स्त्री एक मनुष्य से प्रेम करती है। कुछ दिनो बाद वह दूसरे मनुष्य से प्रेम करने लगती है और पहला आदमी उसके मन से सहज ही उतर जाता है। किसी व्यक्ति को अपने शहर से प्यार होता है। फिर वह अपने देश को प्यार करने लगता है और तब उसका अपने उस छोटे से शहर के प्रति उत्कट प्रेम धीरे-धीरे, स्वाभाविक रूप से चला जाता है।

जब वही मनुष्य सारे ससार को प्यार करने लगता है, तब उसका स्वदेशानुराग—अपने देश के प्रति प्रबल और उन्मत्त प्रेम, धीरे-

धीरे चला जाता है । इससे उसे कोई कष्ट नही होता । यह भाव दूर करने के लिए उसे किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती नही करनी पडती।

एक अशिक्षित इन्द्रिय-सुखो मे उन्मत्त रहता है । जैसे जैसे वह जीवित होता जाता है वैसे वैसे ज्ञान-चर्चा मे उसे अधिक सुख मिलने लगता है और उसके विषय-भोग भी धीरे-धीरे कम होते जाते है । एक कुत्ता अथवा भेडिया जितनी रुचि से अपना भोजन करता है उतना आनन्द किसी मनुष्य को अपने भोजन मे नही आता । परन्तु जो आनन्द मनुष्य को बुद्धि और बौद्धिक कार्यो से प्राप्त होता है उसका अनुभव एक कुत्ता कभी नही कर सकता ।

पहले-पहल इन्द्रियो से सुख होता है । परन्तु ज्यो ज्यो प्राणी उच्चतर अवस्थाओ को प्राप्त होता जाता है, त्यो-त्यो इन्द्रियजन्य सुखो मे उसकी आसक्ति कम होती जाती है । मानव-समाज मे भी देखा जाता है कि मनुष्य की प्रवृत्ति जितनी पशुवत् होती है, वह उतनी तीव्रता से इन्द्रियों मे सुख का अनुभव करता है । पर वह जितना ही शिक्षित और उच्च अवस्था को प्राप्त होता है, उतना ही बुद्धि सम्बन्धी तथा इसी प्रकार की अन्य सूक्ष्मतर बातो मे उसे आनन्द मिलने लगता है ।

जब मनुष्य बुद्धि और मनोवृत्ति से भी विरत हो जाता है और आध्यात्मिकता तथा ईश्वरानुभूति के क्षेत्र मे विचरता है, तो उसे वहा ऐसा अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है कि उसकी तुलना मे सारा इन्द्रियजन्य सुख, यहा तक कि बुद्धि से मिलने वाला सुख भी बिलकुल तुच्छ प्रतीत होता है। जब चन्द्रमा चारो ओर अपनी शुभ्रोज्वल किरणें बिखेरता है, तो तारे धु धले पड जाते है, परन्तु सूर्य के प्रकट होने से चन्द्रमा स्वय ही निष्प्रभ हो जाता है ।

भक्ति के लिए जिस वैराग्य की आवश्यकता होती है, उसको प्राप्त करने के लिए किसी का नाश करने की आवश्यकता नही होती । वह वैराग्य तो स्वभावत ही आता है । जैसे चढते हुए तेज प्रकाश के सामने मन्द प्रकाश धीरे-धीरे स्वय ही धु धला होता जाता है और अन्त मे बिलकुल विलीन हो जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियजन्य तथा

बुद्धिजन्य सुख-ईश्वर प्रेम के समक्ष आप-ही-आप धीरे-धीरे धु घले होकर अन्त मे निष्प्रभ हो जाते हैं ।

यही ईश्वर-प्रेम क्रमश चढते हुए एक ऐसा रूप धारण कर लेता है जिसे पराभक्ति कहते है। तब तो इस प्रेमिक पुरुष के लिए अनुष्ठान की और आवश्यकता नही रह जाती, शास्त्रो का कोई प्रयोजन नही रह जाता, प्रतिमा, मन्दिर, गिरजे, विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय, देश, राष्ट्र-ये सब छोटे-छोटे सीमित भाव और बन्धन अपने आप ही चले जाते हैं। तब ससार मे ऐसी कोई भी वस्तु नही बच रहती, जो उसको बाध सके, जो उसकी स्वाधीनता को नष्ट कर सके।

जिस प्रकार किसी चुम्बकीय की चट्टान के पास एक जहाज के आ जाने से उस जहाज की सारी कीले तथा लोहे की छड़ें खिचकर निकल आती हैं और जहाज के तख्ते आदि खुल कर पानी पर तैरने लगते है, उसी प्रकार प्रभु की कृपा से आत्मा के सारे बन्धन दूर हो जाते हैं और वह मुक्त हो जाती है । अतएव भक्ति-लाभ के उपायस्वरूप इस वैराग्य साधन मे न तो किसी प्रकार कठोरता ही है, न शुष्कता और न किसी प्रकार की जबरदस्ती ही। भक्त को अपने किसी भी भाव का दमन करना नही पडता। प्रत्युत वह तो सब भावो को प्रबल करके भगवान् की ओर लगा देता है।

इसलिए पराभक्ति का आश्रय मानव की त्याग बुद्धि मे लगाकर उसे सासारिक बन्धनो से विमुक्त कर देता है।

भौतिक विज्ञान और शक्तिवाद

आज से कुछ समय पहले भौतिक विज्ञान के पण्डितो का यह मत था कि सृष्टि की उत्पत्ति का कारण द्रव्य है और इसी का परिणाम यह विशाल सृष्टि है। द्रव्य की लक्षणिकता के विषय मे चिरकाल तक इन की यह विशाल-परम्परा रही हैकि द्रव्य परिच्छिन्न,ससीम,अनेक जातिक, आणविक, साकार, गुरुत्वाकर्षक, घार्षणिक, बहुरूप रसायनिक विरचित, पारस्परिक सम्बन्ध युत, शक्तिमय शक्ति परिवर्तनशील, स्थिति स्थापक गुणोपेत, घनत्वयुक्त, उष्णता-ग्राहक, अविनाशी निष्क्रिय, चौम्बिक,दशा-परिवर्तनशील, (ठोस दशा मे) घातक दवाव के अक्षम, गौण गुणवाला और इन्द्रिय-ग्राहय है। इसके वाद एक समय आया जवकि, ये परमाणु-वाद पर जोर देने लगे और सृष्टि का कारण कुछ परिमित पदार्थो के परमाणुओ के योगायोग को मानने लगे । परन्तु कालान्तर मे परमाणुओ की इस भिन्नता का झगडा भी मिट गया और सव पदार्थ एक ही प्रोटाइल नामक पदार्थ के विकार माने जाने लगे। यही पदार्थ सृष्टि की उत्पत्ति का मूलतत्त्व भी समझा जाने लगा। इसके वाद वैज्ञानिक का ध्यान शक्ति की ओर गया, चिरकालीन विचार से उनकी समझ मे यह आया कि असल मे शक्ति ही सृष्टि का मूल कारण प्रकाश, विदयुत् चुम्वक और रसायन हैं ।

वैज्ञानिको का वहुत-सा समय इन्ही छ प्रकार की शक्तिओ की छानवीन मे वीता । अव भी मूल-शक्ति और उसके प्रकार-भेदो की छानवीन का विषय चल ही रहा है। परन्तु कुछ वर्ष हुए जव विलियम पोप ने अपनी विवेचना से यह भी सिद्ध कर दिया कि, पूर्वोक्त छ प्रकार की शक्तिया असल मे विभिन्न नही हैं, एक ही वस्तु है। ये आपस मे रूपान्तरित भी हो सकती है । शक्तिओ का यही आविर्भाव और तिरोभाव है, अन्यथा इनकी वास्तविक उत्पत्ति और नाश नही होता । किन्तु एक समय ऐसा भी आया जवकि, प्राण और जीव नाम की दो शक्तिया और भी मानी जाने लगी । किसी किसी मे मत मे शक्ति-समावर्तन का सिद्धान्त इनके लिये भी स्वीकार किया गया। अन्त मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि ये सव शक्तिया किसी एक नित्य, अज्ञेय,

अपरिच्छिन्न मूल शक्ति का परिणाम है। इसका श्रेय हर्बर्ट स्पेंसर और उसके अनुयायियो को मिला है।

सर विलियम क्रुक्स साहब ने भी एक ब्रिटिश एसोसिएसन मे इसी अज्ञेय शक्ति पर अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहा था कि 'जडवस्तु और जडशक्ति के मूल मे एक सूक्ष्मतम चेतनशक्ति विद्‌मान है।'

यहा यह बता देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि इस शक्ति-सिद्धान्त के वैज्ञानिक रहस्य को भारतवासी बहुत पहले से जानते है। स्वामी शकराचार्य ने वेदान्त-भाष्य मे शक्ति के विषय मे लिखा है कि शक्ति से यह जगत् उत्पन्न होता है और शक्ति मे ही विलीन होता है। जगत् शक्ति की ही परिणति है। योगवाशिष्ठ रामायण मे आता है, 'पारिच्छिन्न और अपरिच्छिन्न सब प्रकार की सत्ता ही शक्ति है।" प्राचीन दर्शनिको ने शक्ति को आठ प्रकार के मूल पदार्थो मे माना है, परन्तु शिवादित्य ने, 'सप्त-पदार्थ-साहिता' मे द्रव्य गुण कर्मादि के स्वरूप को ही शक्ति बतलाता है। न्याय, पातजल और मीमासा आदि दर्शनो मे भी तरह-तरह से शक्ति की स्थापना की गई है। वेदो के स्वाध्याय से भी हमे शक्ति के एकत्व का निश्चय होता है।

पाश्चात्य और पौर्वत्य विद्वानो के उपर्युक्त मतो से यही सिद्ध होता है कि यह विश्व-ब्रह्माड शक्ति का कार्य है। परन्तु अब पाश्चात्य विद्वानो के विचार मे यह बात भी आने लग गई है कि सब मे चेतना और इच्छा शक्ति है। मि० टिंडेल का तो यह मत है कि परमाणु के समुदाय मे जीवन की इच्छा है। अनेक विद्‌वान् मूलशक्ति को इच्छा शक्ति और प्राण शक्ति भी मानते है। एक प्रमुख वैज्ञानिक ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है, 'अब तक की हमारी खोज का यह परिणाम है कि इस द्रव्यात्मक जगत् को इस रूप मे लाने वाली इसके भीतर एक सचालक प्राण शक्ति है और इसके पीछे भी एक सर्वव्यापिनी इच्छा-शक्ति है।

अनेक पाश्चात्य विद्वान् इस शक्ति को अब बुद्धि भी कहते है। उनका कहना है कि प्रत्येक वस्तु मे हमे बुद्धि मालूम होती है। वृक्ष पर चढने वाली बेल मे भी हम बुद्धि का अनुभव करते है। एक वैज्ञानिक इस विषय मे इस तरह कहता है—क्रिस्टल की उत्पत्ति, स्थिति, साधारण

धर्म, सघठन और अन्यान्य घटनाओ की आलोचना से यह विश्वास होता है कि सम्पूर्ण जड जगत् पर एक मात्र शक्ति का आधिपत्य है। इस शक्ति को ही हम जीवन कह सकते हैं। ताप, प्रकाश, रसायन, विदयुत योगाकर्षण, आदि शक्तिया इस जीवन-शक्ति का ही प्रकाश हैं।

इस तरह हम देखते है कि अनेक वैज्ञानिक दार्शनिक लोग, द्रव्य और रसायनिक लोग, द्रव्य और भक्ति के स्थान मे अब प्रकारन्तर से सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शक्ति की कल्पना करने लगे है।

इधर आर्य महर्षियो का बहुत पहले से यह निश्चय रहा है कि इस ससार का कारण चिन्मयी, प्राणस्वरूपिणी, ससारव्यापिनी एकमात्र शक्तिही है। इसी को आर्यलोग आजकल इस तरह नमस्कार करते है। —

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता ॥
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

हमारे शास्त्रो मे शक्ति के मुख्य तीन रूप माने गए है।— एक परा (विष्णु-शक्ति), दूसरी अपरा (क्षेत्रज्ञाख्या), तीसरी अविद्या (कर्मसज्ञाख्या)

विष्णुशक्ति परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा ऽपरा।
अविद्या कर्मसज्ञाख्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥

(विष्णु पुराण ६' ७, ६)

पहली पराशक्ति (वैष्णवी शक्ति) ही महामाया है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहकार इसी के रूप है — इसी की परिणति है।

इसी तरह हम देखते है कि समस्त ससार शक्तिमय है और शक्ति के इन तीनो रुपो से आर्यसाहित्य भरा पडा है। मार्कण्डेयपुराण मे शक्ति के विषय में लिखा है —

यच्च किंचित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मके ॥
तस्य सर्वस्य या शक्ति सा त्व कि स्तूयसे सदा ॥

अर्थात् हे देवि जी ! सर्वत्र जड-चेतन मे जो कुछ आत्मरूप शक्ति है, वह तू ही है।

तन्त्र-ग्रन्थो मे भी इसी महाशक्ति का इस तरह गुणगान किया गया है —

त्वामाद्या परमा शक्ति सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
तव शक्त्या वय शक्ता सृष्टिस्थितिलयादिषु ॥

महर्षि वेदव्यास ने भी इसी महामाया शक्ति को परब्रह्म बतलाया है। जैसे महाभागवत मे लिखा है ।

या मूलप्रकृति सूक्ष्मा जगदादया सनातनी ।
सैव साक्षात् पर ब्रह्म सास्माक देवतापि च ॥

अर्थात् जो सनातन, सूक्ष्म, मूल-शक्ति है, वही परब्रह्म परमात्मा है। सृष्टि-क्रम का वर्णन करते हुए महर्षि वेदव्यास ने आदिशक्ति का तात्विक और आलकारिक वर्णन किया है। वर्णन का अभिप्राय यह है कि सृष्टि के आदि मे न सूर्य था न चन्द्र और न नक्षत्रादि। न दिन था, न रात, न अग्नि, न दिग्दिगन्त और न इनका ज्ञाता। विश्वब्रह्माण्ड उस समय शब्द-स्पर्शादि गुण-रहित, तेजोवर्जित और अन्धकारमय था, थी केवल एकमात्र ब्रह्म-स्वरूपिणी, सच्चिदानन्द-विग्रहा, महामाया, मूल शक्ति। उसने अपनी इच्छा से सत् रज और उसमे अपनी सर्जनेच्छा (सृष्टि करने की इच्छा) शक्ति प्रविष्ट की। उस पुरुष से फिर गुणत्रय के विभागानुक्रम द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुँये। इसके बाद भी सृष्टि-क्रम मे गति न देखकर भगवती माहामाया ने उस मूल-पुरुष को जीव' और परमपुरुष' दो भागो मे विभक्त किया और मूल-प्रकृति स्त्रय 'माया', 'परमा' और विद्या—इन तीन रूपो मे विभक्त हुई। इनमे जीवो को मोहित करने वाली और ससार मे प्रवृत्त कराने वाली चैतन्यमयी सजीवनी शक्ति परमा और तत्व-ज्ञान-स्वरूपा जीवो को इस ससार से निवृत्त कराने वाली शक्ति विद्या कहलाई।

व्यास के श्लोको मे मुख्यत चेतन शक्तिवाद के सृष्टि-क्रम का वर्णन है। इनमे विज्ञानसम्मत चेतन मूल-शक्ति इच्छा का भी समावेश

हो जाता है। शक्ति को ससार का मूल तत्व मानते है। डा० मार्टिन ने भी इसी बात को प्रकारा तर से स्वीकार किया है कि 'प्रकृति मे जो कुछ होता है, उसका अवश्य कुछ कारण है और वह कारण हमारी इच्छा शक्ति का कार्य है।'

लार्ड कालविन ने तोमुक्त-कण्ठ से इस बात को स्वीकार किया है कि 'सृष्टि की उत्पत्ति के मूल मेअवश्य ही कोई सज्ञान चेतन शक्ति है। वे कहते हैं, विज्ञान इस बात को सिद्ध करता है कि विश्व का कोई कर्त्ता है। इससे विश्वास होता है कि ईश्वरीय रचना के मूल मे कोई निमायक और सचालक शक्ति है जो भौतिक विद्युच्छक्ति से सूक्ष्म है।'

इस उपर्युक्त तर्क-परम्परा के विषय मे यह कहा जा सकता कि यद्यपि भौतिक विज्ञान और भारतीय शक्ति-बाद की दृष्टि से शक्ति ही सृष्टि का आदि कारण है, परन्तु ब्रह्मवाद और जगत् के अन्यान्य दार्शनिक सिद्धान्तो की दृष्टि से एक ईश्वर ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण माना जाता है। ऐसी दशा मे शक्तिवाद सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सिद्धान्त नही ठहरता। शक्तिवाद की दृष्टि से इसका यही उत्तर है कि शक्ति को ब्रह्ममयी और ब्रह्म को शक्तिमय मान लेने से वास्तविक सृष्टि के क्रिया कलाप की विवेचना मे कोई झगडा नही रहता। ऐसे ही जड प्रकृति ईश्वर के सहयोग से चेतनता को प्राप्त होती है या देवी ने निर्जीव मूल पुरुष मे चेतनता--उत्पन्न की, ये दोनो एक ही बात है। शक्ति भी तत्व है और परमात्मा भी तत्व है। एक को गौण और दूसरे को प्रधान मान लेने से ब्रह्मवाद के प्रश्न का सहज मे समाधान हो जाता है। ब्रह्मवाद मे ब्रह्म की इच्छा प्रकृति है और शक्तिवाद मे देवी इच्छा प्रकृति। ब्रह्मवाद मे जैसे ब्रह्म और शक्ति का वर्णन है वैसे ही शक्तिवाद मे देवी की इच्छा प्रकृतिका। ब्रह्मवाद मे ब्रह्म और शक्ति का वर्णन है वैसे ही शक्तिवाद मे ब्रह्म का। शक्तिवाद मे दोनो के स्थान मे मूलशक्ति और उसके रुपान्तरो का वर्णन मिलता है। आधुनिक भौतिक शास्त्रवादी तो ऐसा ही मानते भी है और देवी-सम्प्रदाय वालो की भी यही विचार-परम्परा है। शास्त्र भी हमे यही वतलाते है कि —

तत् सद् ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा भेदक प्रतिपाद्यते ।
स्थिता प्रकृतिरेका सा सच्चिदानन्दविग्रहा ।।

इसी दृष्टि से अनेक शक्ति वादी सम्प्रदाय ब्रह्माण्ड का कारण माया, माया का कारण पुरुष और पुरुष का कारण शक्ति को मानते है। इसके बाद उनकी दृष्टि मे कोई मुख्यतम तत्व नही रहता। शक्तिवादी तो यह भी मानते है कि —

शक्तिर्ब्रह्मा शिव शक्ति शक्तिर्विष्णुश्च वासव ।
अन्ये च वहवो देवा शक्तिमूला प्रकीर्तिता ॥

इसके अतिरिक्त गीता 'दिव्य ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम्।' के स्थान मे शक्तिवादी महाभागवतकार के शब्दो मे कह सकते है —

ददामि चक्षुस्ते दिव्य पश्य मे रुपमैश्वरम् ।

"शक्तिकागम सर्वस्व" मे तो महामहिम शक्ति के महात्म्य का वर्णन करते हुए स्वय महादेव जी कहते है कि भगवती शक्ति के योग से ही मैं सर्वकाम–फलप्रद शिवत्व को प्राप्त हुआ हू।' तन्त्र-ग्रन्थो मे तो साफ लिखा हुआ है कि सर्वशक्तिमय जगत्। नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया व्याप्तमिद जगत्॥ ये शब्द शक्ति की विशेपता के ही द्योतक हैं। महामाया, मूल कारण का कारण, माया का अधिष्ठान, सर्वसाक्षी, निरामय ब्रह्म तत्व मेरा ही स्वरूप है। मेरा एक भाग सच्चिदानन्द प्रकृति है और दूसरा माया प्रकृति है। इन्ही से ससार की सृष्टि करती हू। इन सब प्रमाणो का यह सार मालूम होता है कि शक्ति भगवती ससार का आदि कारण है। फिर चाहे वह ब्रह्म की शक्ति हो या चाहे ब्रह्मस्वरूपिणी की।

इस विषय मे कुछ विचारशीलो की यह भी सम्मति है कि ब्रह्म और शक्ति असल मे एक वस्तु हैं। इनकी भिन्नता वास्तविक नही। योगवाशिष्ठ के भाष्य मे लिखा है, विकल्पनाद् भिन्ना न तु वस्तुत। साथ ही शक्ति और ब्रह्मवाद के सामजस्य के प्रतिपादक शास्त्रो की तो यह सम्मति है कि —

शक्तिर्महेश्वरी ब्रह्मा त्रयस्तुल्यार्थवाचका ।
स्त्रीपुनपुसको भेद शब्दतो न परमार्थत ॥

अर्थात् शक्ति महेश्वरी और ब्रह्म एक ही अर्थ वाचक है। इनमे जो लिंग भेद है वह शब्दात्मक है, वैसे परमार्थत इनमे कोई भेद नही है।

शक्ति का मूल स्त्रोत नारी

प्रागैतिहासिक काल मे मानव तमोगुण प्रधान प्रकृतियो का भण्डार था। उसके आवास तथा भोजन आदि का कही एक स्थान मे किसी प्रकार का प्रवन्ध न था। उसमे पशुओ को अपने अधिकार मे रखने की प्रवृति ने जन्म लिया। मानव जाति का अपेक्षा कृत विकास हुआ पर उस विकास मे आज की भान्ति विवाह प्रथा का नाम-मात्र भी न था। आसग लिप्सा ही उस सम्मिलन मे प्रजापति था, काम पुरोहित के स्वरुप को अपनाए था, छलवल कौशल आदि उसके तंत्र-मन्त्र थे। उसके अनन्त काल वाद भी देवरेण सुतोत्पत्ति, मानव शास्त्र से प्रमाणित आठ प्रकार के विवाह तथा औरस दत्तक आदि अनेक प्रकार के पुत्रो की प्रथा प्रचलित थी।

अव एक प्रकार के स्वार्थवद्ध मनुष्य विभिन्न स्थानो मे दल वदल होने लगे। पशुओ तथा यौन पिपासा निवारणार्थ मानवी की रक्षा प्रवृत्ति ने जन्म लिया। दल के सदस्य पशुओ को चराते और रात्रि में एक ही स्थान मे बान्धते। इस प्रकार एकत्र वास को प्रथा प्रचलित हुई। दल के जिस सदस्य की वलवृद्धि सव से अधिक रहती वह दूसरो पर अपना प्रभुत्व सम्पादन करता और उसी के नाम से वह दल प्रचलित हो जाता। इस प्रकार गोत्र आदि की उत्पत्ति हुई। गोत्र उस स्थान का नाम था जिस मे एक गृह की गौए चराई जाती थी, जिस गृह की गौए जिस स्थान पर चरा करती उसी के नाम से उस गृह का भी नाम पडता। उस समय नारी गोत्र पति की विशेष रूप से तथा गोत्र के अन्य सदस्यो की सामान्य रूप से उपभोग्य समझी जाती थी। इस प्रकार गोत्र के साथ ही नारी का प्रथम विवाह सम्बध स्थापित हुआ। तव द्रौपदी रूपिणी नारी एक ही साथ सौ पतियो का मनोरन्जन करने मे सलग्न हुई। असहाय, मनुष्य के सुख दु ख मे समान रूप से साथ देने वाली उसकी पहले की सहचरी अब गृह से वन्चे भला? और अहकारी मनुष्यो की पाशविक प्रवृत्ति को चारितार्थ करने में कुशल एव पराधीन दासी—मात्र बन गई।

वाद मे अनेक गोत्र अपने स्वार्थ के लिए एक साथ मिल गए। इस प्रकार जातिवाद का उदय हुआ। सतत बढती हुई जातियो का एक भाग सुजला, सुफला भूमि विशेप की खोज मे निकल पडा और घूमते २ स्त्री पुरुप के चिन्हो की उपासना लेकर भारत भूमि मे आया। बहुत समय तक वे भारत भूमि मे समृद्धि शाली होकर रहे। वाद मे उसी की एक शाखा मालावार से नौकाओ द्वारा मिश्र मे पहुची। मानवी की अन्तर्हित दैवी शक्ति भी सदैव मानव के साथ रहकर तथा उसकी सन्तान, धन धान्य आदि के पालन तथा रक्षण मे सहायक होकर उसे अपनी अवस्था की उन्नति मे प्ररणा देती रही।

कालान्तर मे मानव मन ने नारी-प्रतिमा के रूप मे जगदम्वा की ह्लादिनी शक्ति की उपासना करनी सीखी। उसी समय भारत के देव गण देवताओ से परिशोभित गगन-चुम्वी हिमालम की चोटियो पर जगत् की समस्तनारी शरीर और मन की समष्टिभूत हैममयी उमा को उज्जवल-काचन गौर मूर्ति के प्रथम दर्शन कर धन्य हुये। उन्ही के श्रीमुख से भगवती की महिमा वाणी का अविर्भाव हुआ

अह राष्ट्री सगमनी वसूना।
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

मया सोऽन्नमत्तियो विपश्यति
य प्राणिति य ई वृणोत्युत।

ऋक् देवी सूक्त

मैं ससार की राज्ञी हू। मेरे उपासक ही विभूति सम्पन्न होते है, सम्पूर्ण यज्ञो मे प्रथम-पूजा का अधिकार भी मुझे ही प्राप्त है। यह इस प्राणि जगत् का दर्शन, श्रवण अन्न ग्रहण तथा श्वास प्रश्वास आदि मेरी प्राप्ति से सम्पादित होते है।

देवताओ से ही प्रेरणा पाकर ऋपि गणो ने देवी की महिमा का प्रत्यक्ष अनुभव करके उसे गाया ।

अजामेका लोहित शुक्लकृष्णाम्,
वह्वी प्रजा सृजमाना स्वरूपा ।

अजो ह्येको जुषमाणो ऽनुशेते
जहात्येना भुक्तभोगामजो ऽन्य

शुक्ल कृष्ण रक्त स्वरूप सत्वतम रजोगुणमयी एक अजा नारी एक अज पुरुष के साथ सयुक्त रहकर अपने अनुरूप वहुत सी प्रजा उत्पन्न करती है ।

इन्ही ऋषियो का अनुकरण करते हुए मनु ने कहा था ।

द्विधा कृत्वातनोर्देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्या स विराजमसृजत् प्रभु ॥

सृष्टि से पूर्व ईश्वर ने अपने को दो भागो मे बाट कर एक से पुरुष की और दूसरे से स्त्री की उत्पत्ति की । इस प्रकार नारी की मानव के साथ समानता स्पष्ट प्रतीत होती है । वयो वृद्ध मनु ने अब उसी नारी को सहधर्मिणी समझ कर सम्मान की दृष्टि से देखना सिखाया और सकेत किया कि जिस राष्ट्र तथा वश मे नारी की पूजा होती है वहा सब देव निवास किया करते है—इनकी पूजा के अभाव मे मानव समाज की सब क्रियाए निष्फल हो जाती है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता

इस प्रकार भारत के आर्य-गौरवरूप ऋषियो ने ही ससार मे नारी महिमा का सब से पूर्व अनुभव और प्रचार किया । उस सम्मान, श्रद्धा और पूजा के फलस्वरूप भारत की पुण्य भूमि को अपूर्व सौन्दर्य भूपित सीता, सती सावित्री, पुण्य स्वरूपा दमयन्ती आदि अनेक साध्वियो ने अपने पवित्र जन्म से अलकृत किया ।

भारत के तन्त्रो मे शक्ति पूजा द्वारा नारी की मातृभाव से उपासना का ही प्रधान्य प्रतिष्ठित किया है । जगत् कारण ईश्वर को जग जननी जगदम्बा आदि नामो से सम्वोधित कर उनकी नारी भाव से उपासना

करना भारत की निजी सम्पत्ति है । युगावतार भगवान् श्रीराम कृष्ण देव के पुण्य आविर्भाव से नारी के माध्यम में शक्ति पूजा आज भारत मे फिर से विशेष रूप मे सजीव हो उठी है।

अब वीर मार्ग साधक भारतीय को सावधान रहना होगा। छुरे की धार के समान दुर्गमपथ पर चलने के लिए नारी प्रतीक के रूप मे जगत् शक्ति रूपिणी जगदम्बा की पूजा करनी होगी। जान लो कि भारत के तन्त्रकार तुम्हारे लिए निशि पूजा का विधानकर तुम्हे दिन की अपेक्षा रात में अधिक सावधान रहने के लिए सकेत करते हैं। श्रद्धा और भक्ति पूर्वक शुद्ध भाव से उपासना में लगे रहने से हम भी समय आने पर नारी मय जगदम्बा के दर्शन करने में सफल हो सकेंगे। नारी को भोग की सामग्री न समझ कर उसे मानव मात्र में सगृहीत शक्ति के रूप मे देखने की आवश्यकता है। उसके विधिवद् जागरण के लिए हमें ऋषि विधिको अपना कर प्रयत्न शील रहना चाहिए। ऐसा करने पर ही भारतीय माध्यम से हम मानव मात्र का कल्याण करने मे सफल हो सकेंगे।

अजामेका लोहित शुक्लकृष्णाम्,
वह्वी प्रजा सृजमाना स्वरूपा ।
अजो ह्येको जुषमाणो ऽनुशेते
जहात्येना भुक्तभोगामजो ऽन्य

शुक्ल कृष्ण रक्त स्वरूप सत्वतम रजोगुणमयी एक अजा नारी एक अज पुरुष के साथ सयुक्त रहकर अपने अनुरूप बहुत सी प्रजा उत्पन्न करती है ।

इन्ही ऋषियो का अनुकरण करते हुए मनु ने कहा था ।

द्विधा कृत्वातनोर्देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्या स विराजमसृजत् प्रभु ॥

सृष्टि से पूर्व ईश्वर ने अपने को दो भागो मे बाट कर एक से पुरुष की और दूसरे से स्त्री की उत्पत्ति की । इस प्रकार नारी की मानव के साथ समानता स्पष्ट प्रतीत होती है । वयो वृद्ध मनु ने अब उसी नारी को सहधर्मिणी समझ कर सम्मान की दृष्टि से देखना सिखाया और सकेत किया कि जिस राष्ट्र तथा वश मे नारी की पूजा होती है वहा सब देव निवास किया करते है—इनकी पूजा के अभाव मे मानव समाज की सब क्रियाए निष्फल हो जाती हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता

इस प्रकार भारत के आर्य-गौरवरूप ऋषियो ने ही ससार मे नारी महिमा का सब से पूर्व अनुभव और प्रचार किया । उस सम्मान, श्रद्धा और पूजा के फलस्वरूप भारत की पुण्य भूमि को अपूर्व सौन्दर्य भूषित सीता, सती सावित्री, पुण्य स्वरूपा दमयन्ती आदि अनेक साध्विओ ने अपने पवित्र जन्म से अलकृत किया ।

भारत के तन्त्रो मे शक्ति पूजा द्वारा नारी की मातृभाव से उपासना का ही प्रधान्य प्रतिष्ठित किया है । जगत् कारण ईश्वर को जग जननी जगदम्बा आदि नामो से सम्वोधित कर उनकी नारी भाव से उपासना

करना भारत की निजी सम्पत्ति है । युगावतार भगवान् श्रीराम कृष्ण देव के पुण्य आविर्भाव से नारी के माध्यम मे शक्ति पूजा आज भारत मे फिर से विशेष रूप मे सजीव हो उठी है ।

अब वीर मार्ग साधक भारतीय को सावधान रहना होगा । छुरे की धार के समान दुर्गमपथ पर चलने के लिए नारी प्रतीक के रूप मे जगत् शक्ति रूपिणी जगदम्बा की पूजा करनी होगी । जान लो कि भारत के तन्त्रकार तुम्हारे लिए निशि पूजा का विधानकर तुम्हे दिन की अपेक्षा रात में अधिक सावधान रहने के लिए सकेत करते है । श्रद्धा और भक्ति पूर्वक शुद्ध भाव से उपासना मे लगे रहने से हम भी समय आने पर नारी मय जगदम्बा के दर्शन करने मे सफल हो सकेंगे । नारी को भोग की सामग्री न समझ कर उसे मानव मात्र में सगृहीत शक्ति के रूप में देखने की आवश्यकता है । उसके विधिवद् जागरण के लिए हमें ऋषि विधिको अपना कर प्रयत्न शील रहना चाहिए । ऐसा करने पर ही भारतीय माध्यम से हम मानव मात्र का कल्याण करने में सफल ह' सकेंगे ।

उपासना का मनोवैज्ञानिक आधार

मानसिक स्वास्थ्य सुधार मे आत्म बल की वृद्धि उपासना द्वारा सभव है, अन्यथा नही। प्राकृतिक चिकित्सा के विद्वान् डाक्टर हेनरी लिडलहर ने अपनी 'प्रैक्टिस आफ थेरोप्यूटिक्स नामक पुस्तक मे मनुष्य के मनोभावो द्वारा उस के स्वास्थ्य पर पडने वाले प्रभाव को वताते हुए लिखा है कि हम अपने शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार के स्वास्थ्य को किसी महापुरप, अदृश्य देवदूत तथा सर्वव्यापी तत्व से एकत्व स्थापित करके निश्चयपूर्वक सुधार सकते है। विश्वव्यापी आत्मा को ही विभिन्न नामो से जैसे-ईश्वर, जगत्पिता, अचल नियम अथवा परमात्मा या व्रह्म के नाम से पुकारा जाता है। हम जिस प्रकार की आत्मा का ध्यान करते है, जिस प्रकार भौतिक शास्त्र वायरलैस के द्वारा ससार के विभिन्न स्थलो से रेडियो स्टेशन द्वारा सम्पर्क स्थापित कर लेता है, इसी प्रकार हम स्वय को ऊचा से ऊचा उठा सकते है और अपने को नीचे गिराने से रोक भी सकते है। प्रत्येक मनुष्य का मस्तिक स्वय मानसिक वायरलैस के समान है, जो कि विभिन्न प्रकार के भले और बुरे विचारो को सदा प्राप्त करता रहता है। यह कार्य मनुष्य की जाग्रत और स्वप्न दोनो ही अवस्थाओ मे होता है। हमारे मन मे कौनसा विचार उठेगा और कौनसा नही, इस वात पर निर्भर करता है कि हम किस प्रकार की आत्मा से अपना सम्पर्क जोड रहे है, अर्थात् हम किस के प्रति श्रद्धा, प्रेम और आस्था स्थापित कर रहे है तथा किस का ध्यान कर रहे है।

उक्त मनोवैज्ञानिक सत्य का समर्थन हम 'उपटन सिकलेयर'की मेन्टल रेडिया' नामक पुस्तक से पाते है। उपटन सिकलेलर ने वताया है कि मनुष्य अपने विचार न केवल भौतिक माध्यम के द्वारा भेज सकता है, वह अभौतिक मार्गो से भी अपने विचार दूसरे लोगो को भेज सकता है। इस तरह ससार मे समर्थ योगी लोग लोक-कल्याण के विचारो को एक स्थान पर बैठ कर ही विश्व की पूरी जनता तक पहुचा देते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति महान् आत्माओ के सदेशो के लिए अपने मन के द्वार को खोलकर

उन दुर्लभ सदेशो को प्राप्त कर सकता है जो सामान्य व्यक्ति को नही मिलते ।

योगसूत्र मे बताया गया है कि मनुष्य जो कुछ भी सोचता है वह तदनुरूप हो जाता है ।

प्रत्येक मनुष्य की लगन उसके स्वभाव के अनुसार ही होती है । यही उसका सत्व है । इसी के अनुसार वह अपने मित्रो को, गुरुओ को, देवी देवताओ को चुनता है और उन पर अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकाशित करता है । यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है । मनुष्य की जैसी श्रद्धा होती है उसी के अनुसार उसका व्यक्तित्व बन जाता है । 'जैसी जिस की भावना वैसी उसकी सिद्धि' ।

आधुनिक मनोविज्ञान ने अचेतन मनकी कुछ गूढ क्रियाओ की खोज करके यह बताया है कि मनुष्य अपनी आत्मा का साक्षात्कार अनेक प्रकार की गुप्त चेष्टाओ द्वारा करता है । इस प्रकार की चेष्टाओ मे एक चेष्टा आन्तरीकरण अथवा आत्मीकरण की चेष्टा है । जो बात हमारा भीतरी मन चाहता है उस के अनुरूप वह किसी बाहरी आदर्श अथवा व्यक्ति क ध्यान करने लगता है । जब यह ध्यान बहुत अधिक बढ जाता है तब ध्याता और ध्येय मे सम्पूर्ण एकत्व स्थापित हो जाता है । तादात्मीकरण की सामान्य स्थिति को ही किसी ड्रामा अथवा खेल देखने वाले दर्शको की मनोवृत्ति मे देखते हैं । तादात्मीकरण के बिना होने वाली घटनाओ का आनन्द नही लिया जा सकता । साहित्य निर्माण और उसके रसास्वादन मे भी अचेतन मन की यही तादात्मीकरण की प्रक्रिया काम करती है । इसे साहित्य समाज अलोचको ने काल्पनिक तादात्मीकरण (इमेजिनेटिव आइडेन्टीफिकेशन) कहा है इस काल्पनिक तादात्मीकरण की पराकष्ठा हम उपासक की मनोवृत्ति मे देखते है । उच्चकोटि की उपासना मे मनुष्य स्वय को खो देता है और केवल उपास्य उस के लिए रह जाता है ।

थूलेस ने अपनी 'साइकोलोजी आफ रिलिजन' नामक पुस्तक में यह बात बतायी है कि सेन्ट कैथेराइन एक विशेष समय पर जब कि हजरत ईसा क्रास पर कीले से ठोके गये थे अपने शरीर के विभिन्न

उपासना का मनोवैज्ञानिक आधार

मानसिक स्वास्थ्य सुधार मे आत्म वल की वृद्धि उपासना द्वारा सभव है, अन्यथा नही। प्राकृतिक चिकित्सा के विद्वान् डाक्टर हेनरी लिडलहर ने अपनी 'प्रैक्टिस आफ थेरोप्यूटिक्स नामक पुस्तक मे मनुष्य के मनोभावो द्वारा उस के स्वास्थ्य पर पडने वाले प्रभाव को बताते हुए लिखा है कि हम अपने शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार के स्वास्थ्य को किसी महापुरप, अदृश्य देवदूत तथा सर्वव्यापी तत्व से एकत्व स्थापित करके निश्चयपूर्वक सुधार सकते है। विश्वव्यापी आत्मा को ही विभिन्न नामो से जैसे-ईश्वर, जगत्पिता, अचल नियम अथवा परमात्मा या ब्रह्म के नाम से पुकारा जाता है। हम जिस प्रकार की आत्मा का ध्यान करते है, जिस प्रकार भौतिक शास्त्र वायरलेस के द्वारा ससार के विभिन्न स्थलो से रेडियो स्टेशन द्वारा सम्पर्क स्थापित कर लेता है, इसी प्रकार हम स्वय को ऊचा से ऊचा उठा सकते है और अपने को नीचे गिराने से रोक भी सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य का मस्तिक स्वय मानसिक वायरलैस के समान है, जो कि विभिन्न प्रकार के भले और बुरे विचारो को सदा प्राप्त करता रहता है। यह कार्य मनुष्य की जाग्रत और स्वप्न दोनो ही अवस्थाओ मे होता है। हमारे मन मे कौनसा विचार उठेगा और कौनसा नही, इस बात पर निर्भर करता है कि हम किस प्रकार की आत्मा से अपना सम्पर्क जोड रहे हैं, अर्थात् हम किस के प्रति श्रद्धा, प्रेम और आस्था स्थापित कर रहे हैं तथा किस का ध्यान कर रहे है।

उक्त मनोवैज्ञानिक सत्य का समर्थन हम 'उपटन सिकलेयर'की मेन्टल रेडिया' नामक पुस्तक से पाते है। उपटन सिकलेलर ने बताया है कि मनुष्य अपने विचार न केवल भौतिक माध्यम के द्वारा भेज सकता है, वह अभौतिक मार्गों से भी अपने विचार दूसरे लोगो को भेज सकता है। इस तरह ससार मे समर्थ योगी लोग लोक-कल्याण के विचारो को एक स्थान पर बैठ कर ही विश्व की पूरी जनता तक पहुचा देते है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति महान् आत्माओ के सदेशो के लिए अपने मन के द्वार को खोलकर

उन दुर्लभ सदेशो को प्राप्त कर सकता है जो सामान्य व्यक्ति को नही मिलते।

योगसूत्र मे वताया गया है कि मनुष्य जो कुछ भी सोचता है वह तदनुरूप हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य की लगन उसके स्वभाव के अनुसार ही होती है। यही उसका सत्व है। इसी के अनुसार वह अपने मित्रो को, गुरुओ को, देवी देवताओ को चुनता है और उन पर अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकाशित करता है। यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। मनुष्य की जैसी श्रद्धा होती है उसी के अनुसार उसका व्यक्तित्व वन जाता है। 'जैसी जिस की भावना वैसी उसकी सिद्धि'।

आधुनिक मनोविज्ञान ने अचेतन मनकी कुछ गूढ क्रियाओ की खोज करके यह वताया है कि मनुष्य अपनी आत्मा का साक्षात्कार अनेक प्रकार की गुप्त चेष्टाओ द्वारा करता है। इस प्रकार की चेष्टाओ मे एक चेष्टा आन्तरीकरण अथवा आत्मीकरण की चेष्टा है। जो वात हमारा भीतरी मन चाहता है उस के अनुरूप वह किसी वाहरी आदर्श अथवा व्यक्ति क ध्यान करने लगता है। जव यह ध्यान वहुत अधिक वढ जाता है तव ध्याता और ध्येय मे सम्पूर्ण एकत्व स्थापित हो जाता है। तादात्मीकरण की सामान्य स्थिति को ही किसी ड्रामा अथवा खेल देखने वाले दर्शको की मनोवृत्ति मे देखते हैं। तादात्मीकरण के विना होने वाली घटनाओ का आनन्द नही लिया जा सकता। साहित्य निर्माण और उसके रसास्वादन में भी अचेतन मन की यही तादात्मीकरण की प्रक्रिया काम करती है। इसे साहित्य समाज अलोचको ने काल्पनिक तादात्मीकरण (इमेजिनेटिव आइडेन्टीफिकेशन) कहा है इस काल्पनिक तादात्मीकरण की पराकष्ठा हम उपासक की मनोवृत्ति मे देखते हैं। उच्चकोटि की उपासना मे मनुष्य स्वय को खो देता है और केवल उपास्य उस के लिए रह जाता है।

थूलेस ने अपनी 'साइकोलोजी आफ रिलिजन' नामक पुस्तक में यह वात वतायी है कि सेन्ट कैथेराइन एक विशेष समय पर जव कि हजरत ईसा क्रास पर कीले से ठोके गये थे अपने शरीर के विभिन्न

स्थलो मे उसी प्रकार की पीडा का अनुभव करती थी जिस प्रकार की पीडा शरीर मे कीले ठोकने से होती है। ऐसी अवस्था मे एक डाक्टर उनकी देख भाल करते थे। उन्होने कैथेराइन की पीडा को वास्तविक अनुभूत किया। कहा जाता है कि मीरा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम मे इतनी डूब जाती थी कि वह श्रीकृष्ण रूप ही बन जाती थी और जब मरी तो वह द्वारिकाधीश मे ही समा गई।

आधुनिक काल मे ससार के सभी मजहबो का तिरस्कार हो रहा है। मजहवी साधनाओ की खिल्ली उडाई जाती है। कहा जाता है कि धर्म मानव जाति का व्यापक पागलपन है। यह मनुष्य के अज्ञान के ऊपर निर्भर है। जैसे-जैसे मनुष्य का वैज्ञानिक अथवा तार्किक विचार बढता है वैसे वैसे धर्म भी सप्राण होता जाता है। ससार के बहुत से मनोवैज्ञानिक प्राय धर्म को विज्ञान विरोधी, तर्क विरोधी और अज्ञान पर आधारित मानते है। कहते है कि मनुष्य का वोद्धिक नही, वर भावात्मक सहारा है। जैसे जैसे मनुष्य स्वय मे सामर्थ्य और स्वावलम्वन का अनुभव करता है वह किसी धर्म की वाहरी देवी-देवता की, चाहे वे वास्तविक हो या काल्पनिक, उपासना की आवश्यकता नही देखता।

वर्तमान मनोवैज्ञानिको मे चार्ल्स युग एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होने मजहव की अनेक प्रकार की साधनाओ को मानव-स्वास्थ्य, मानव-विकास के लिए नितान्त आवश्यक माना है। उनका कथन है कि ससार के सभी मानसिक चिकित्सक मिलकर उतने मानसिक रोगिओ को आरोग्य प्रदान नही कर पाते, जितना कि ससार का निम्न से निम्न स्तर का मजहव कराता है। धार्मिक साधनाए मनुष्य को यह आश्वासन देती है, जो किसी प्रकार उसे दूसरी ओर से प्राप्त नही हो सकते है। इस जीवन के वाद भी आगे के जीवन की हर एक व्यक्ति को आकाक्षा रहती है। भौतिक विज्ञान इस अकाक्षा की पूर्ति के लिए मनुष्य को कुछ भी नही देता। यही कारण है कि भौतिक विज्ञान मे अधिक से अधिक प्रगति करने वाले देशो मे जितना पागलपन अथवा मानसिक रोग वढ गया है उतना उन देशो मे नही वढा है जहा भौतिक विज्ञान का प्रसार अधिक नही हुआ। मरने के वाद के जीवन-विपय मे भी धार्मिक साधनाए ही मनुष्य को सतोष देती है।

इतना ही नहीं, अपने जीवन काल में भी मनुष्य को अनेक प्रकार के असंतोष होते हैं। इन असंतोषों का सामना साधारण मनुष्य अपनी सीमित शक्ति से नहीं कर पाता। जिस व्यक्ति को अपने स्वयं के विषय में अथवा संसार विधान के विषय में उतना ही ज्ञान है जितना कि भौतिक विज्ञान उसे देता है ? वह किसी प्रकार की असहनीय निराशा के होने पर या तो मृत्यु या पागलपन का आवाहन करने लगता है। कभी कभी वह झूठे संतोष से स्वयं को भुलाता रहता है। असाधारण मनोविज्ञान में अनेक मनोरचनाएं बताई गई हैं जिससे मनुष्य अपने असंतोष को भुलाने की चेष्टा करता है।

डाक्टर राधाकमल मुकर्जी ने अपनी 'सिकनेस आफ सिविलिजेशन' नामक पुस्तक में वर्तमान काल के मनुष्य की दयनीय मानसिक अवस्था का भली-भान्ति चित्रण किया है। हमारी वर्तमान भौतिक उन्नति ने तथा वैज्ञानिक बुद्धि ने मनुष्य को आन्तरिक शान्ति नहीं दी, वर उसको आध्यात्मिक दृष्टि से खोखला कर दिया है। इसी का परिणाम है कि जहां संसार के प्रगतिशील राष्ट्र बड़े-बड़े विश्व युद्धों की तैयार करते रहते हैं, वहां दूसरी ओर सम्पूर्ण मानव भारी मानसिक असंतोष और विक्षिप्तता का अनुभव करता है। डाक्टर फ्रायड ने इस प्रकार की मानव की दयनीय अवस्था को हटाने का कोई मार्ग नहीं बताया है। उनके अनुसार यह मनुष्य का दुर्भाग्य ही है, जिससे वह किसी प्रकार भी मुक्त नहीं हो सकता। सभ्यता का विकास और मानसिक रोगों की वृद्धि एक-दूसरे के सहगामी हैं। डाक्टर मुकर्जी स्वयं एक अच्छे साधक और सगुण ब्रह्म के उपासक हैं उन्होंने डाक्टर फ्रायड की उक्त निराशा-वादिता का उत्तर अपने नए दर्शन के द्वारा दिया है। यह दर्शन भौतिक विज्ञान की विधियों पर अथवा उनकी मान्यताओं पर न होकर अन्तरानुभूति और अलौकिक सहानुभूति के सिद्धान्तों पर आधारित है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर वह तत्व उपस्थित है, जो अपार शक्ति, ज्ञान और आनन्द का स्रोत है। इसका साक्षात्कार करने के लिए ही अनेक प्रकार की उपासनाओं तथा साधनाओं का अवलम्बन किया जाता है। वेदान्त-दर्शन के अनुसार सत्य मनुष्य की अन्तरात्मा में है। मनुष्य के आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति बाहर से भीतर की ओर होती है। जब तक मनुष्य का मन विषयों-मुखी है, तब तक वह अपने स्वरूप को विषयों में

स्थलो मे उसी प्रकार की पीडा का अनुभव करती थी जिस प्रकार की पीडा शरीर मे कीले ठोकने से होती है। ऐसी अवस्था मे एक डाक्टर उनकी देख भाल करते थे। उन्होने कैथेराइन की पीडा को वास्तविक अनुभूत किया। कहा जाता है कि मीरा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम मे इतनी डूब जाती थी कि वह श्रीकृष्ण रूप ही बन जाती थी और जब मरी तो वह द्वारिकाधीश मे ही समा गई।

आधुनिक काल मे ससार के सभी मजहबो का तिरस्कार हो रहा है। मजहवी साधनाओ की खिल्ली उडाई जाती है। कहा जाता है कि धर्म मानव जाति का व्यापक पागलपन है। यह मनुष्य के अज्ञान के ऊपर निर्भर है। जैसे-जैसे मनुष्य का वैज्ञानिक अथवा तार्किक विचार बढता है वैसे वैसे धर्म भी सप्राण होता जाता है। ससार के बहुत से मनोवैज्ञानिक प्राय धर्म को विज्ञान विरोधी, तर्क विरोधी और अज्ञान पर आधारित मानते है। कहते है कि मनुष्य का बोद्धिक नही, वर भावात्मक सहारा है। जैसे जैसे मनुष्य स्वय मे सामर्थ्य और स्वावलम्वन का अनुभव करता है वह किसी धर्म की बाहरी देवी-देवता की, चाहे वे वास्तविक हो या काल्पनिक, उपासना की आवश्यकता नही देखता।

वर्तमान मनोवैज्ञानिको मे चार्ल्स युग एक ऐसे व्यक्ति हुए है जिन्होने मजहव की अनेक प्रकार की साधनाओ को मानव-स्वास्थ्य, मानव-विकास के लिए नितान्त आवश्यक माना है। उनका कथन है कि ससार के सभी मानसिक चिकित्सक मिलकर उतने मानसिक रोगिओ को आरोग्य प्रदान नही कर पाते, जितना कि ससार का निम्न से निम्न स्तर का मजहव कराता है। धार्मिक साधनाए मनुष्य को यह आश्वासन देती हैं, जो किसी प्रकार उसे दूसरी ओर से प्राप्त नही हो सकते है। इस जीवन के वाद भी आगे के जीवन की हर एक व्यक्ति को आकाक्षा रहती है। भौतिक विज्ञान इस अकाक्षा की पूर्ति के लिए मनुष्य को कुछ भी नही देता। यही कारण है कि भौतिक विज्ञान मे अधिक से अधिक प्रगति करने वाले देशो मे जितना पागलपन अथवा मानसिक रोग वढ गया है उतना उन देशो मे नही वढा है जहा भौतिक विज्ञान का प्रसार अधिक नही हुआ। मरने के वाद के जीवन-विपय मे भी धार्मिक साधनाए ही मनुष्य को सतोष देती है।

इतना ही नही, अपने जीवन काल मे भी मनुष्य को अनेक प्रकार के असतोष होते है। इन असतोषो का सामना साधारण मनुष्य अपनी सीमित शक्ति से नही कर पाता। जिस व्यक्ति को अपने स्वय के विषय मे अथवा ससार विधान के विषय मे उतना ही ज्ञान है जितना कि भौतिक विज्ञान उसे देता है ? वह किसी प्रकार की असहनीय निराशा के होने पर या तो मृत्यु या पागलपन का आवाहन करने लगता है। कभी कभी वह झूठे सतोष से स्वय को भुलाता रहता है। असाधारण मनोविज्ञान मे अनेक मनोरचनाए बताई गई हैं जिससे मनुष्य अपने असतोष को भुलाने की चेष्टा करता है।

डाक्टर राधाकमल मुकर्जी ने अपनी 'सिकनेस आफ सिविलिजेशन नामक पुस्तक मे वर्तमान काल के मनुष्य की दयनीय मानसिक अवस्था का भली-भान्ति चित्रण किया है। हमारी वर्तमान भौतिक उन्नति ने तथा वैज्ञानिक बुद्धि ने मनुष्य को आतरिक शान्ति नही दी, वर उसको आध्यात्मिक दृष्टि से खोखला कर दिया है। इसी का परिणाम है कि जहा ससार के प्रगतिशील राष्ट्र बडे-बडे विश्व युद्धो की तैयार करते रहते हैं, वहा दूसरी ओर सम्पूर्ण मानव भारी मानसिक असतोष और विक्षिप्तता का अनुभव करता है। डाक्टर फ्रायड ने इस प्रकार की मानव की दयनीय अवस्था को हटाने का कोई मार्ग नही बताया है। उनके अनुसार यह मनुष्य का दुर्भाग्य ही है, जिससे वह किसी प्रकार भी मुक्त नही हो सकता। सभ्यता का विकास और मानसिक रोगो की वृद्धि एक-दूसरे के सहगामी हैं। डाक्टर मुकर्जी स्वय एक अच्छे साधक और सगुण ब्रह्म के उपासक है। उन्होने डाक्टर फ्रायड की उक्त निराशा-वादिता का उत्तर अपने नए दर्शन के द्वारा दिया है। यह दर्शन भौतिक विज्ञान की विधिओ पर अथवा उनकी मान्यताओ पर न होकर अन्तरानुभूति और अलौकिक सहानुभूति के सिद्धान्तो पर आधारित है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर वह तत्व उपस्थित है, जो अपार शक्ति, ज्ञान और आनन्द का स्रोत है। इसका साक्षात्कार करने के लिए ही अनेक प्रकार को उपासनाओ तथा साधनाओ का अवलम्बन लिया जाता है। वेदान्त–दर्शन के अनुसार सत्य मनुष्य की अन्तरात्मा मे है। मनुष्य के आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति बाहर से भीतर की ओर होती है। जब तक मनुष्य का मन विषयो-मुखी है, तब तक वह अपने स्वरूप को विषयो मे

प्रक्षेपित होते हुए ही देख मकेगा। सभी प्रकार के लोक मे प्रसिद्ध देव-भाव अन्तरात्मा की पूर्णता के प्रक्षेपण (प्रयोजेक्शन) है। इस सत्य को पश्चिम मे डाक्टर युगने और पूर्व मे स्वामी विवेकानन्द तथा उनके अनुयायियो आदि ने प्रसिद्ध किया है।

मन्त्र सत्ता और उपासना

मन्त्र-शास्त्र का विपय गहन और जटिल है। उसे समझ लेना साधारण बात नही। उसके सम्बन्ध मे यहा तक लिखा है कि—'एतद् गोप्य महागोप्य न देय यस्य कस्यचित् ।" तथापि इस इस विषय का जो विवेचन शास्त्र मे किया गया है, वह अत्यन्त सुन्दर, बुद्धि पुरस्सर और मननीय है। उसे प्रकट कर देने में कोई आपत्ति नही। इसलिए यहा शास्त्र सम्मत विचार प्रकट करने का कुछ प्रयास किया जा रहा है।

भारतीय वाङ्मय मे मन्त्र-विद्या का आसन बहुत ऊँचा माना गया है। वैदिक-साहित्य, जैन-साहित्य और बौद्ध-साहित्य मे इस विषय पर स्वतन्त्र चर्चा की गई है। जैसे काव्य, कोश, अलकार, व्याकरण, न्याय और छन्द आदि विपयो के स्वतन्त्र ग्रन्थ अलग-अलग हैं, वैसे ही मन्त्र-विद्या के सैकडो स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। जैन-साहित्य मे नमस्कार मन्त्र-कल्प, प्रतिष्ठा कल्प चक्रेश्वरी-कल्प, ज्वालामालिनी-कल्प, पद्मावती-कल्प,सूरिमन्त्र-कल्प, वाग्वादिन-कल्प, श्रीविद्या-कल्प, विद्धमान-विद्या-कल्प रोगापहारिए-कल्प आदि अनेक कल्प-ग्रन्थ, विद्यमान हैं । इसी प्रकार बौद्ध-साहित्य में तारा-कल्प, वसुधारा कल्प, घण्टाकर्ण-कल्प आदि अनेक ग्रन्थ मौजूद हैं। वैदिक-साहित्य में तो इस शास्त्र का एक अलग भण्डार ही है। उसमें कात्यायनी, निर्वाण, कुलार्णव आदि अनेक और अपरिमित तन्त्र ग्रन्थ मौजूद है। उपरिनिर्दिष्ट ग्रन्थो मे कुछ छप भी गये हैं, पर इस विषय के अधिकाश महत्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं और दिन-प्रतिदिन दुर्लभ होते जा रहे हैं और इन तीनो साहित्यो के मन्त्र-शास्त्र-सम्वन्धी ग्रन्थो की नामावली-मात्र से ही यह बात प्रकट हो जाती है कि किसी समय इस विषय की भारत में बडी उन्नति थी।

कल्प-ग्रन्थ-जिन ग्रन्थो में मन्त्र-विधान, यन्त्र-विधान, मन्त्र-यन्त्रोद्धार, वलिदान, दीपदान, आवाहन, पूजन, विसंजन और साधन आदि विपयो का वर्णन किया गया हो, वे ग्रन्थ 'कल्प-ग्रन्थ कहलाते हैं।

तन्त्र–ग्रन्थ—जिनमें गुरु-शिष्य के सवाद रूप से तथा शिव-पार्वती

के सवाद रुप से मन्त्र, तन्त्र और औषधिवल्ली आदि द्रव्यो का वर्णन होता है वे तन्त्र-ग्रन्थ' है।

पटल-ग्रन्थ-किसी एक देवता को आराध्य मानकर उसी देवता से सम्बन्ध रखनेवाली मन्त्र, यन्त्र आदि की साधन-विधिया जिनमे लिखी हो तथा मान्त्रिक भूमिकाओ का वर्णन भी हो, अनेक काम्यकर्मो मे निष्णात होने की वाते वर्णित हो वे 'पटल ग्रन्थ' कहलाते है।

पद्धति-ग्रन्थ — जिन ग्रन्थो मे अनेक देवी-देवो की साधना का प्रकार वताया गया हो, उन्हे 'पद्धति-ग्रन्थ' कहते है।

वीज-कोश—मन्त्रो के पारिभाषिक शब्दो को समझने की तथा एक-एक अक्षर तथा बीज की अनेक व्याख्याए जिन ग्रन्थो मे लिखी हो, उन्हे 'मन्त्र-कोश' कहते है।

इस प्रकार कल्प, तन्त्र, पटल, पद्धति और बीज-कोश प्रभृति ग्रन्थो मे मन्त्र-शास्त्र का साहित्य विभक्त हे और इसका यह क्रम वैदिक, जैन और बौद्ध तीनो प्रकार के साहित्यो मे विद्यमान है।

मन्त्र-साधन किस मार्ग द्वारा करना चाहिये, अर्थात मन्त्र किस मार्ग द्वारा सिद्ध हो सकता है, यह पहले जान लेना चाहिये। इस सम्बन्ध मे मन्त्र-शास्त्र मे तीन मार्गो का उल्लेख है, जो 'दक्षिण', 'वाम' और 'मिश्र' कहलाते है। सात्विक देवता की सात्विक मन्त्र और सात्विक सामग्री द्वारा सात्विक उपासना करने काजो मार्ग है उसे 'दक्षिण मार्ग', या 'सात्विक मार्ग', कहते है। मदिरा मास मीन, माख और महिला आदि पाच वस्तुओ से युक्त भैरवी-भैरवी आदि तामस प्रकृति के देवी-देवताओ की साधना और उपासना जिस मार्ग द्वारा हो, वह 'वाममार्ग' कहलाता है। इसी प्रकार जिस मार्ग मे मीन, माम मदिरा आदि पदार्थो को प्रत्यक्ष रुप मे न ग्रहण कर उनके प्रतिनिधियो से इष्ट की साधना करते है, उसे, 'मिश्र-मार्ग' कहते है। पर वास्तव मे दक्षिण और वाम यही दो मार्ग है। वाममार्ग प्राय तन्त्र-शास्त्र का विषय है। कल्प-ग्रन्थो में इसका वर्णन नही है। वाममार्गी प्राय भैरव और काली आदि देवी-देवो

उपासक होते हैं। वे नौ नाथो को गुरु मानते है, गुरु–चरणपादुका, श्रीचक्र तथा भैरवी–चक्र की पूजा करते है। परन्तु मन्त्र–शास्त्र के विषय मे इतना कहना आवश्यक है कि वाममार्ग का प्रभाव मिश्रमार्ग पर तो पडा ही है, दक्षिणमार्ग पर भी इसका कुछ–न–कुछ प्रभाव अवश्य है। इसी से दक्षिणमार्ग वाले भी तामस प्रकृति के देवताओ की आराधना करने लग गये।

पुरुष–प्रकृति की आत्मशक्ति ही सच्ची शक्ति है। अत आत्मवस्तु पर विश्वास रखकर, इसके प्रभाव को जानकर, मन्त्र–साधना करने वाला दक्षिणमार्ग का भी साधक 'शाक्त' कहा जा सकता है। इसलिए शाक्त कहलाने मे वह सकोच नही करता। परन्तु वाममार्गी तथा कोल अपने को वाममार्गी या कोल कहलाने मे भय करते हैं।

दक्षिणमार्ग सात्विक होने से प्रकट मार्ग है और वाममार्ग असात्विक होने से गुप्त मार्ग है। 'गोपनीय गोपनीय गोपनीय प्रयत्नत की शिक्षा वे प्रथम से ही देते हैं। जो हो, वाममर्ग का वल अधिक वढ जाने से ही सात्विक मन्त्रो और सात्विक देवताओ का भारतीयो द्वारा सिद्ध होना दु साध्य हो गया, जिससे कितनो का स्वय मन्त्र–शास्त्र से विश्वास उठ गया।

मन्त्र–शास्त्र मे केरल, काश्मीर और गौड नामक तीन सम्प्रदाय प्रचलित हैं वैदिक धर्मावलम्वी मान्त्रिको मे प्राय केरल–सम्प्रदाय है, वौद्धो मे गौड और जैनियो मे काश्मीर सम्प्रदाय वाले सरस्वती प्रभृति सात्विक देवनाओ के उपासक और दक्षिणमार्गी होते है। गौड सम्प्रदाय वाले तारा तथा काली आदि तामस प्रकृति के देवो के उपासक और वाममार्गी होते है। केरल–सम्प्रदाय मिश्रमार्गी सम्प्रदाय है। इसमें प्रकट–रुप से दक्षिण और गुप्त–रीतियो से वाममर्ाग का अवलम्वन किया जाता है। इस सम्प्रदाय के साधक महालक्ष्मी प्रभृति देवताओ के उपामक होते है। सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लिखा है कि—

ससारसारभूतत्वात् प्रकाशानन्ददानत ।
यश मौभाग्यकरणात् सम्प्रदाय इतीरित ॥ (कुलार्णव)

गुरुहीनात् क्रमत्यागात् सम्प्रदायवियोगत ।
दारिद्र्य प्रथम भूयान्नतत्र कार्या विचारणा ॥

(शक्ति–सगम)

ये दोनो श्लोक अत्यन्त विचारणीय हैं। किसी सम्प्रदाय की दीक्षा लिए बिना मन्त्र सिद्ध नही होता इस लिए सम्प्रदाय का अवलम्बन करना साधक के लिए परमावश्यक है।

वेदागम, बौद्धागम और जैनागम–इस प्रकार मन्त्र–शास्त्र के भीतर तीन आगम है। जैनागम दक्षिणमार्गावलम्बी और काश्मीर सम्प्रदाय प्रधान है, बौद्धागम वाममार्गावलम्बी और गौढ-सम्प्रदाय प्रधान है तथा वेदागम मिश्र–मार्गावलम्बी और केरल–सम्प्रदाय प्रधान है। वैदिक मतावलम्बी मान्त्रिकवर्ग वेदागम को 'शैवागम' भी कहते हैं। इसका कारण यह बतलाते है कि मन्त्र शास्त्र की उत्पत्ति शिवजी से हुई है। इसलिए तन्त्र–शास्त्रो मे शिव–पार्वती के सवाद रूप से मन्त्र–यन्त्र–तन्त्रो का वर्णन किया गया है।

मन्त्रशास्त्र के सम्प्रदायो को चक्र-पूजा भी मान्य है। जैनो के काश्मीर-सम्प्रदाय मे 'सिद्धचक्र' (नवपदमण्डल-चक्र) की सत्विक पूजा का वर्णन है। केरल-सम्प्रदाय मे 'श्रीचक्र' की पूजा की विधि है और गौड-सम्प्रदाय मे 'भैरवी-चक्र' की पूजा का उल्लेख है। भैरवी-चक्र का पूजन करने वालो का यह सिद्धान्त है कि 'प्रवृत्ते तु भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमा। चक्र-पूजा की कल्पना ब्रह्माण्ड पूजा या विश्व-पूजा, विश्वप्रेम और विश्व-सेवा धर्म की सूचक है।

मन्त्र-दीक्षा—गुरु के समीप यथाविधि मन्त्रोपदेश लेने को 'दीक्षा' कहते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय की विधि के अनुसार मन्त्र-दीक्षा शिष्य की योग्यता को सूचित करती है।

मन्त्र पीठिका— मन्त्र शास्त्र मे चार पीठिकाओ का वर्णन है। बिना पीठिका के मन्त्र, सिद्ध नही हो सकता। श्मशान-पीठ, शव पीठ अरण्य पीठ और श्यामा पीठ ये चार पीठिकाएँ है।

श्मशान-पीठ—उसे कहते हैं, जिसमे प्रतिदिन रात्रि मे श्मशान-भूमि मे जाकर यथाशक्ति विधि पूर्वक मन्त्र का जप किया जाता है।

जितने दिन का प्रयोग होता है, उतने दिन तक मन्त्र का साधन यथा-विधि किया जाता है। जैन-ग्रन्थो मे लिखा है कि श्री कृष्ण वासुदेव के लघुभ्राता गज सुकुमाल मुनीश्वर इसी पीठिका मे परमेष्टी महामन्त्र का साधन करते हुए आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर सिद्धि और मुक्ति को पहुचे थे। इसे 'प्रथम पीठिका भी कहते हैं।

शव-पीठ—किसी मृतक कलेवर के ऊपर बैठकर या उसके भीतर घुसकर मन्त्रानुष्ठान करना शव-पीठिका है। यह पीठिका वाममार्गियो की प्रधान पीठिका है। कर्ण-पिशाचिनी, उच्छिष्ठ-गणपति, कर्णेश्वरी, उच्छिष्ठ चाण्डालिनी आदि देवताओ की साधना तथा अघोर पथ वालो की साधनाए इसी पीठिका के द्वारा होती है।

अरण्य-पीठिका—मनुष्य जाति का जहा सचार न हो, सिंह, श्वापद, सर्प आदि हिंस्र पशु-प्राणियो की जहा बहुलता हो, ऐसे निर्जन वन-स्थल में किसी वृक्ष या शून्य मन्दिर आदि का आश्रय लेकर मन्त्र-साधन करना और निर्भयतापूर्वक मन को एकाग्र रखकर तल्लीन हो जाना अरण्य-पीठिका है। निर्वाण-मन्त्र की विधि मे लिखा है कि निर्वाण मन्त्र यदि साधको जपेदरण्यभूमौ स्थित । अर्थात् अरण्य मे जाकर शिव-मन्दिर में निर्वाण-मन्त्र का जप करने से शीघ्र सिद्धि होती है। इतिहास से पता चलता है कि प्रथम के ग्रन्थो में आत्मसिद्धि करने के लिए निर्जन वन मे ही रहने की प्रथा थी। वे नगर, ग्राम आदि में या उनके समीप नही रहते थे, सदा एकात वन मे ही रहकर आत्मध्यान किया करते थे। तब उनको अनेक सिद्धिया भी प्राप्त हो जाती थी। जब से त्यागी वर्ग वनवास त्याग कर नगर, ग्राम आदि का आश्रय लेकर रहने लगे, तभी से ये सिद्धिया नष्ट हो गयी और वे माया-मोह मे फस कर मारे-मारे फिरने लगे, अर्थात् त्यागी जीवन के लिए एकान्तवास ही श्रेष्ठ है।

श्यामा-पीठिका—यह कठिन से कठिनतर है। विरला ही कोई महापुरुष इस पीठिका से उत्तीर्ण हो सकता है। एकान्त स्थान में षोड-शवर्षीया, नवयौवना, सुन्दरी स्त्री को वस्त्र रहित कर, सम्मुख बैठाकर साधक मन्त्र-साधने में तत्पर हो और मन को कभी यत्किंचित् भी विचलित न होने दे और कठोर ब्रह्मचर्य में स्थिर रहकर मन्त्र का

साधन करे। इसे 'श्यामा-पीठिका' कहते है। जैन ग्रन्थो मे लिखा है कि द्वैपायन पुत्र मुनिवर शुकदेव, स्थूलभद्राचार्य ने इस पीठिका का अवलम्बन किया था और मन्त्र–साधना करके वे विजेता हुए थे।

य०ा तक मन्त्र–शास्त्र की बहिरग आलोचना हुई, अर्थात् मन्त्र के साधन मे क्या–क्या वाहरी वाते होती है, यह हम सक्षेप मे बता चुके। अब यहा उसकी अन्तरग आलोचना करते है।

मन्त्र किसे कहते है ? मन्त्र क्या वस्तु है ? इससे क्या लाभ है ? किस प्रकार लाभ हो सकता है ? ऐसा होने का क्या कारण है ? ऐसे प्रश्नो का होना स्वाभाविक है। इन प्रश्नो के लिए 'मन्त्र' शब्द की परिभाषा जान लेना आवश्यक है। यह विषय व्यावहारिक नही है, इसका सम्वन्ध मानसशास्त्र से है। मनकी एकाग्रता पर इसकी नीव है। इन्द्रियो के विषयो की ओर से लक्ष्य हटाकर मनको एकाग्र कर मन्त्रसाधन करने से मन्त्र सिद्ध होता है। मनकी चचलता जितनी जल्दी हटेगी, उतनी ही जल्दी मन्त्र सिद्ध होगा। मन्त्र शब्द का शब्दार्थ भी महर्षियो ने यही किया है कि 'मननात् त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्र प्रकीर्तित (श० क० ६१७) अर्थात् 'म' कारसे हमारे कार्य सिद्ध हो वह 'मन्त्र' है।

वैदिक, पौराणिक और वैष्णव आदि सत्विक मन्त्रो के साधन मे उपर्युक्त पीठो की कोई आवश्यकता नही है। एकान्त निरापद पवित्र अरण्य तो सभी के लिए उत्तम है। पर सात्विक मन्त्रो के अनुष्ठान-जप तीर्थ स्थानो मे, गगा आदि पवित्र नदियो के तट पर, देवमन्दिरो मे और घरो मे भी भली-भान्ति किए जा सकते हैं। श्रद्धा, विधि और सयम-नियम का पालन तो आवश्यक है ही।

मन्त्र-विद्या योग मे उच्चकोटि का विषय है। यह मनकी वे-तारकी तारवर्की है। हीप्नोटिजम, मैस्मैरिजम आदि इस विद्या के सम्मुख अत्यन्त तुच्छ है। मन से वर्णोच्चार का वर्णन होने से एक ज्योति प्रकट होती है। उन्ही वर्णों के समुदाय का नाम मन्त्र है। इस विपय का ज्ञाता सम्पूर्ण सिद्धिया प्राप्त कर सकता है। इसीलिए शास्त्रकारो ने मन्त्र-शब्द का अर्थ 'विचार' किया है। राजनीतिक-शास्त्र मे इसी से लिखा गया है कि जिन विचारो को गुप्त रखकर राज्य-तन्त्र

चलाया जाता है, वे मन्त्र है। अत राज्य तन्त्र के प्रधान सचालक को 'महामन्त्री' और उसके साथ काम करने वालो के समूह को 'मन्त्रिमण्डल' कहते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है —

तन्मन्त्राद्यपडश्रीण यत्तृतीयाद्यगोचरम्।
रहस्यालोचन मन्त्री रहश्छन्नमुपह्वरम्॥
(शा० क० ६१६)

मन्त्र साधक की योग्यतानुसार ही सिद्ध होता है। इसलिए मान्त्रिक कहा करते हैं कि 'जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धि' जपते ही चले जाओ। अवश्य सिद्धि होगी।

मन की शुद्धि पर मन्त्र-शास्त्र की नीव है। जब तक मनुष्य को विषय–लालसा रहती है, तब तक बुद्धि निश्चयात्मिका नही होती। मन तल्लीन नही होता। वह विषयवासना से अशुद्ध रहता है इसलिए कहा हैकि यदि किसी कार्य को सिद्ध करना हो तो वासना रहित होकर कार्य मे तल्लीन हो जाना चाहिये। तब वह शीघ्रतर सिद्ध हो जाता है। मन्त्र का जाप तल्लीन होकर करने से मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। पर मन्त्र-साधन के समय साधनीय कार्य की ओर ही लक्ष्य रहने से मन्त्र मे तल्लीनता नही हो सकती। बार-बार उस कार्य का स्मरण होता है और विना एकाग्रता के मन्त्र सिद्ध नही होता। यही मन्त्रशास्त्र का रहस्य है और वासना रहित होकर एकाग्रता प्राप्त कर लेना सहज बात नही है। यह बडा ही कठिन है।

अब यन्त्र-साधन की बात लीजिये। अष्टगन्ध, सुरभि-द्रव्य आदि की स्याही बनाकर भोजपत्र, कागज या सुवर्ण, रजत, ताम्र आदि धातु-पत्र पर षड्दल, अष्टदल, शतदल, सहस्त्रदल तथा त्रिकोण, चतुष्कोण या वर्तुल रेखाओ के भीतर अक्षर या अको को लिखना और उसका यथाविधि पूजन आदि कर साधन करना 'यन्त्र-साधना' कहलाती है। सिद्धचक्र-यन्त्र, श्रीचक्र-यन्त्र, भैरवीचक्र-तन्त्र, ऋषिमण्डल-यन्त्र, विजय यन्त्र आदि हजारो यन्त्र हैं। किसी-किसी स्थल पर मन्त्र-यन्त्र दोनो साथ साथ करने पडते है और किसी किसी स्थल पर ऐसा नही भी है। किन्तु यह यन्त्र विद्या भी मन्त्र-शास्त्र का ही एक अग है। वर्णो या अको को एकाग्रतापूर्वक लिखना ही इस साधना की मुख्य क्रिया है।

औषधि-द्रव्यो द्वारा कार्य सिद्ध करना 'तन्त्र-साधना' है। कितने ही तन्त्रो मे औषधि-द्रव्यो के मिश्रण के साथ मन्त्र-यन्त्र का भी उपयोग होता है। जड और चेतन शक्ति के सयोग द्वारा कार्य-साधन करना ही तन्त्र-साधन का विषय है और मन्त्र, यन्त्र तथा तन्त्र का एक दूसरे के साथ प्राय सर्वत्र उपयोग होता है, अत' तन्त्र-साधन भी मन्त्रशास्त्र का एक अग है।

मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र से क्या काम लिए जाते है ? इसके लिए काम्य कर्मो के प्रयोगो का मन्त्रिको ने वर्गीकरण किया है। वह 'वर्गीकरण' इस प्रकार है —

स्तम्भन मोहमुच्चाट वश्याकर्षणजृम्भणम् ।
विद्वेषण मारणच शान्तिक पौष्टिक तथा ।।
विद्याप्रवादपूर्वस्य तृतीयप्रभृतादयम् ।
उद्धृत कर्मवाताय श्री वैरस्वामिसूरिभि ।।

(मन्त्रद्वात्रिंशिका)

अर्थात्—स्तम्भन, मोहन, उच्चाटन, वश्याकर्षण, जृम्भण विद्वेषण मारण, शान्तिक और पौष्टिक—इस प्रकार से नौ प्रकार मन्त्र के प्रयोग है। यह श्रीवैरस्वामिसूरिजी ने कर्मो के घात करने के लिए वद्याप्रवादपूर्वके तृतीय प्राभृत से उद्धृत किया है। किसी-किसी के मत से सान्तानिक दसवा प्रयोग भी माना जाता है।

जिस मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र के करने से चोर, डाकू, सर्प, श्वापद और परचक्र (शत्रुसेना) के आक्रमण का भय मिटकर वह जहा का तहा अटक जाय, स्थगित रह जाय, उसे 'स्तम्भन' प्रयोग कहते है। जिस प्रयोग के करने से साधक किसी को भी अपने वशीभूत कर ले उसे 'मोहन' प्रयोग कहते हैं। राज-मोहन, सभा-मोहन, और स्त्री-पुरुष-मोहन आदि मोहन—प्रयोग के तीन प्रकार हैं। इन तीनो की साधनाए भी पृथक्—पृथक् है। जिस प्रयोग के करने से विद्वेषी रोगाक्रात हो जाता है, उसका मन अस्थिर, उल्लासरहित तथा निरुत्साह हो जाता है, वह स्थान और पद से भ्रष्ट हो जाता है, उस प्रयोग को 'उच्चाटन' कहते है। जिस प्रयोग के करने से इच्छित पदार्थ साधक

के पास स्वय चला जाए, यदि चेतन प्राणी हो तो उसका विपरीत मन भी अनुकूल होकर साधक की शरण मे आ जाए, उमे 'वश्याकर्षण' कहते हैं।

जिस प्रयोग के करने से शत्रु आदि साधक से डरने लग जाए-भयभीत हो जाए, कापने लग जाए, वही 'जृम्भण' प्रयोग है। जिस प्रयोग-बल से देश, कुटुम्ब, जाति या समाज मे परस्पर विद्वेष-फूट-कलह होने लगे उसे 'विद्वेषण' कहते है। आततायी, अन्यायियो कोआत्मशक्तिपूर्वक जिस मन्त्र-प्रयोग द्वारा साधक प्राणदण्ड दे सके, उस प्रयोग का नाम 'मारण'है।

जिस प्रयोग के करने से महामारी, राजभय परचक्र आदि भय, रोग और विप्लवो की शाति हो जाए, उसे 'शान्तिक' प्रयोग कहते हैं। वैद्यक-शास्त्रो ने भी लिखा है कि 'सिद्धवैद्यस्तु मान्त्रिक अर्थात् विना औषध के मन्त्र-प्रयोग करके रोगो को हटाने वाले जो वैद्य है, वे चारो प्रकार के वैद्यो में श्रेष्ठ और 'सिद्ध वैद्य' कहलाते है।

जिस प्रयोग के करने से ऐश्वर्य वढे, सुख-प्राप्त हो, देवदर्शन हो, शुभाशुभ भविष्य प्रतीत हो, सव कामनाए सिद्ध हो, उसे 'पौष्टिक' प्रयोग कहते है।

जिस प्रयोग के करने से वन्ध्या को भी पुत्र का लाभ हो जाय, वश की वृद्धि हो, उसे 'सान्तानिक' प्रयोग कहते हैं। मृत—वत्सा रोग आदि का उपाय इसी प्रयोग मे हैं।

(इनमे 'मोहन', 'उच्चाटन', 'जृम्भण', 'विद्वेषण' और 'मारण' तामसी प्रयोग हैं। इन्हे श्रेय-साधक को कभी नही करना चाहिये)।

इस वर्गीकरण मे १० प्रयोग वताए गये है, किन्तु कितने ही तान्त्रिक-सम्प्रदाय वाले केवल छ प्रयोग ही मानते है और उपर्युक्त दश प्रयोगो का छ प्रयोगो मे ही अन्तर्भाव कर लेते है।

असल वात यह है कि पहले भारत मे इस विद्या का अधिक प्रचार था। परन्तु जव से इस देश मे मानसिक दुर्वलता वढने लगी, यह विद्या भी कम होती गयी।

मन्त्र- विद्या जैसी उपयोगी विद्या का पूर्ण ज्ञाता आज दृष्टिगत क्यो नही होता ? भारतीय सम्प्रदाय है, उन सब मे धर्म गुरु-द्वारा मन्त्र-दीक्षा लेने की प्रणाली अभी तक मौजूद है। पर उन धर्मगुरुओ मे और उनके दिए हुए मन्त्रो मे 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' की सामर्थ्य नही है। बात यह है कि मन्त्रदाता गुरु और मन्त्र दीक्षा लेने वाले शिष्य कैसे होने चाहिये ? साधना किस प्रकार करनी चाहिये, आदि बातो को समझकर दीक्षा आदि होने से उसमे शक्ति आती है। केवल बाहरी दिखावे से कुछ नही होता।

मन्त्रदाता गुरु और दीक्षा लेने वाला शिष्य कैसा हो, इसी सम्बन्ध मे मन्त्र-शास्त्र यह कहता है।

पूर्वमात्महित ज्ञात्वा सूरिणा गुणसूरिणा।
शिष्यस्यापि हित चिन्त्य दातुकामेन काचनम् ॥

(भद्रगुप्तचार्य)

अर्थात् - गुरु अपने हित का विचार कर, शिष्य के हित को भी जानकर नि स्पृहभाव से मन्त्रदान करे, किन्तु काचन आदि के लोभ से न न करे।

मन्त्राधिकारी के लिए लिखा है।

दक्षो जितेन्द्रियो धीमान् कोपानलजलोपम ।
सत्यवादी विलोभश्च मायामदविवर्जित ॥
मानत्यागी दयायुक्त परनारीसहोदर ।
जितेन्द्रो गुरु भक्तश्च मन्त्रग्राही भवेन्नर ॥

(भद्रगुप्ताचार्य)

अर्थात् - जो चतुर, जितेंद्रिय, बुद्धिमान, शान्त,अक्रोधी, सत्यवादी, निर्लोभी, कपट, अहकार और अभिमान से रहित, दयायुक्त, परस्त्रीत्यागी, जितेन्द्रिय और गुरु का भक्त हो, वही मन्त्र लेने योग्य शिष्य हो सकता है। इसी प्रकार और भी कई महत्वपूर्ण बातें हैं, जिनकी उपेक्षा से आज मन्त्रशास्त्र की अवनति हो रही है।

तन्त्र-ग्रन्थो के कर्ता मन्त्रि ने 'पूर्वधरो से इसका विकास हुआ माना और इस विद्या का अधिकारी 'त्यागीवर्ग' को ही कहा गया है। मन्त्र-शास्त्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक मत हैं। तथापि यह निर्विवाद सिद्ध है कि भारत की उन्नति के पूर्ण विकास के समय यह विद्या प्रचलित थी, फिर बाद को यह विद्या घर आदि कुलो मे भी पहुँची। तदनन्तर इसके अनेक रूपान्तर हुए और आज तो यह छिन्न-भिन्न दशा मे बहुत ही कम अवशिष्ट रह गयी है।

आज मान्त्रिक कहलाने वाले मन्त्रविद्यापाठक देवता के दास बनकर पूजा-स्तुति-भक्ति करते है और देवता को प्रसन्न करना चाहते हैं। बल्कि आज तो ऐसे लोग अधिक बढ रहे हैं जो या तो मन्त्र-शास्त्र पर विश्वास ही नही करते, या अपने को मन्त्रशास्त्र के ज्ञाता बताकर भोले श्रद्धालु नर-नारियो का तन-धन अपहरण करते हैं, पर 'त्यागीवर्ग' ऐसा नही करता था। त्यागी मन्त्राक्षरो को जपते थे अवश्य, परन्तु मन्त्राक्षरो के सभी वर्णों को लोम-विलोम-सन्निपात करके वे स्वय मन्त्ररूप हो जाते थे और तब उनकी तपश्चर्या तथा एकाग्रता से, आत्मिक स्वरूप प्रकट हो जाने से, मन्त्राधिष्ठायक देवता स्वय आकर उनकी सेवा-भक्ति करने लग जाता था और उनके अधीन बना रहता था। जिस कार्य के लिए उनकी इच्छा होती थी, वह कार्य उनके बिना कहे ही देवता स्वय करने लग जाता था। इसमे वह अपना सौभाग्य समझता था कि आज वह एक महात्मा की सेवा कर कृतकृत्य हुआ। यह विषय अत्यन्त उच्च कोटि का है ऐसे महात्मा के लिए लिखा भी है कि—'देवार्पित नमस्यन्ति यस्य धर्मं सहायक।' इसी प्रकार तन्त्रो मे भी लिखा है—

देवाधीन जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवता।
ते मन्त्रा ब्रह्मणोऽधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवता॥

इसका मतलब यही है कि मन्त्र के अधीन मन्त्राधिष्ठायक देवता है और वे मन्त्र ब्रह्मज्ञानी (आत्मज्ञानी) महापुरुषो के अधीन हैं,इसीलिए आत्मज्ञानी महापुरुष स्वयमेव साक्षात् देव-स्वरूप हैं। उन्हे दूसरे देवता की उपासना करने का कोई प्रयोजन ही नही रहता। उपर्युक्त श्लोक मे जो 'ब्राह्मण' शब्द आया है, वह हमारी धारणा मे जातिवाचक नही,

गुणवाचक है। इसलिए यहा "ब्राह्मण' शब्द के आत्मविद् अर्थ की सगति लगती है । अतएव मन्त्र वही सिद्ध कर सकता है जो अध्यात्म-विद्या का ज्ञाता होता है। काश्मीर-सम्प्रदाय के मान्त्रिक सरस्वती के उपासक होते हैं। ये सात्विक उपासक होते हैं। 'मुखे प्रसरण यस्या. सा 'सरस्वती' शब्द की व्युत्पत्ति है । अर्हन्मुखापद्म मे वास करने वाली अर्थात् भगवद्-वाणी का नाम ही सरस्वती है। यह सात्विक उपासना है। यह सिद्धि और मुक्ति की दाता है। राजस और तामस उपासना करने से लौकिक कार्य हो भी जाएँ तो भी परलोक सिद्धि नही होती, इसलिए ऐसी उपासनाए हेय तथा त्याज्य है परन्तु कलिकाल की महिमा अगम और अपार है। भारतीय सम्प्रदायो के आचार्यो ने ने भी मोह मे फसकर ऐसी उपासना करनी प्रारम्भ कर दी थी। सर्व-सग-परित्यागी सन्यासियो के आचार्यगण भी माया-देवी की पूजा करने लग गये है । भारतीय जनता मे मन्त्रशास्त्र का सच्चा स्वरूप जानने वाले लोग वहुत ही घट गये है और ऐहिक कामनाओ के अभिलाषी वर्ग की वृद्धि हो गई है ।

मन्त्रो का औषधियो के कार्यकारी गुणो (Active Principles) पर विशेष प्रभाव का मूल्याकन ।

मन्त्रो की ध्वनि मनुष्य के वात सस्थान पर विशेष कार्य कारी रहती है। इसी लिए मत्र जाप द्वारा वात सस्थान सुदृढ बन जाता है। इससे रोगी की क्षमताशक्ति मे भी वृद्धि होती है। इन मन्त्रो की सूचनाध्वनि का प्रभाव कुछ एक औषधियो पर भी विशेष रहता है। वे औषधिएं मत्र जाप करने वाले रोगियो पर अन्य रोगियो की अपेक्षा अधिक प्रभाव शाली देखी गई हैं। जो औषधिएं भिन्न भिन्न रोगो पर पहले निष्फल हो चुकी थी उन्ही आयुर्वेदिक औषधियो को मन्त्रोक्षित करने के बाद उन्हो रोगियो को दिया गया जिन्होंने अपने चिकित्सा काल मे इन्हें निष्फल पाया था। उन रोगो का मूल्याकन निम्न प्रकार से दिया जाता है।

	रोग का नाम (Name of the disease)	सफलता प्रतिशत
1	मानसिक अग्नि मान्द्य (Loss of Appetite due to mental disturbance)	85%
2	शोकातिसार	80 ,,
3	अपस्मार (Epilepsy)	70 ,,
4	अम्लपित्त (Hyper acidity)	65 ,,
5	आमवात (Rheumatism)	75 ,,
6	आमाशय व्रण (gastric ulcer)	80 ,,
7	पक्वाशय व्रण (Duodenal ulcer)	80 ,,
8	त्वचा रोग (Skin disease)	80 ,,
9	निद्रानाश (Insomnia)	85 ,,

10	पाण्डु रोग (Anaemia)	75 %
11	स्मृति नाश (Loss of memory)	90 ,,
12	शीतपित्त (Urticaria)	70 ,,
13	श्वास (Asthma)	80 ,,
14	पक्षाघात्त (Paralysis)	82 ,,
15	क्षय (Tuberculosis)	70 ,,

चिकित्सा मे रत्न पद्धति (Ratna Theory) और मन्त्रवाद की एकता एव उनका मूल्याकन

रत्न प्रकृति की ऐसी अमूल्य देन है जो कि विश्व को सब प्रकार की ज्योतियो से समन्वित रखती है। जिन सप्त रग की विश्व-ज्योतियो से ब्रह्माण्ड की रचना, श्री भगवती आद्याशक्ति, महालक्ष्मी स्वरूपा प्रकृति ने की है, उसका यहा विस्तृत विवेचन, गूढ विषय होने के कारण, अधिक नही किया जा रहा है। केवल सक्षिप्त रूप से उद्धृत किया जा रहा है।

विश्वव्यापी ज्योतिओ की अविनाशी निधि स्वरूप सात मुख्य रत्न हैं। इन रत्नो मे सात ज्योतिए इन्द्रधनुष की तरह विराजमान दिखाई देती हैं। इसी से सम्पूर्ण विश्व को यह सूचना मिलती है कि ये सात ज्योतिए ससार का मूल कारण हैं। इनके अतिरिक्त और किसी विषय मे सृष्टि के किसी कारण की खोज करना उपयुक्त नही है। ये विश्व ज्योतिए ब्रह्माड की रचना करने वाली, दिव्य शक्ति, भगवती जी के दिव्य देह से निकली हैं और उन्ही की भाति इनमे भी सर्व-ज्ञान-सम्पन्न, सर्वशक्तिमान भगवान् शिव को इस विषय मे इस प्रकार उपदेश दिया गया है।

शृणु देव मया दत्त ज्ञान रत्नेषु विस्तृतम्।
तस्माद्रत्नधरा विद्धि पार्वती पर्वतोद्भवाम् ॥

अर्थात् हे देव शिव, मैंने आपके हृदय मे मत्र ज्ञान का विकास कर दिया है। वही ज्ञान रत्नो मे भी है। मुझे ही आप रत्नधरा, शक्ति रूपी पर्वत की सन्तान-स्वरूपा, अर्थात् हिमालय की पुत्री रूपा सतान-पार्वती समझिये। पर्वतो से रत्न उत्पन्न होते हैं। मैंने भी पार्वती यह नाम पर्वत हिमालय की पुत्री बन कर ही प्रसिद्ध करवाया है। जो व्यक्ति मुझे समझने का प्रयत्न करेगा रत्नो का ज्ञान भी स्वय सूक्ष्म बुद्धि-बल से उसे होता जायेगा, इसलिए आपको भी मन्त्र ज्ञान के साथ २ रत्नो का भी विशेष ज्ञान रहेगा। जो व्यक्ति रत्नो के धारण के साथ २

मुझे समझने की चेष्टा करेगा, उस व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण मन्त्र शीघ्र फलदायी होकर सिद्ध हो जायेंगे । मार्कण्डेय पुराणोक्त प्रमाणो से सिद्ध है कि आदिकाल मे भगवान् शिव ने, कलियुग मे मन्त्रो से सिद्धि शीघ्र प्राप्त न हो जाये इस निमित्त अन्य मन्त्रो के कीलन के साथ साथ, दुर्गा सप्तशती के मन्त्रो को भी कीलित कर दिया । इसलिये दुर्गापाठ को निष्कीलित करके ही करना चाहिये, जैसा कि लिखा है —

"यो निष्कीला विधायैना नित्य जपति सस्फुटम्,
ससिद्ध सगण. सो ऽ पिगन्धर्वो जायते नर ॥"

इसीलिए निष्कीलन के लिए सिद्ध कु चिका स्तोत्र का पाठ आवश्यक है । यहा पर मन्त्रो की ध्वनि और रत्नो की रश्मियो द्वारा मनुष्य के वात सस्थान (Nervous system)पर विशेष प्रभाव पडता है । ये रत्न मन्त्रो की ध्वनियो के साथ २ विशेष रूप से अधिक कार्यशील हो जाते है क्योकि इनकी भी सूक्ष्म क्रिया मन्त्रध्वनि की भान्ति रश्मियो द्वारा (Radioactive rays) या स्पर्श द्वारा या इनकी भस्मो आदि के सेवन द्वारा वात सस्थान पर प्रभाव होकर भिन्न २ अगो पर अवस्थानुसार प्रभाव होता है। इसीलिए तो भिन्न २ ग्रहो के मन्त्र भी भिन्न भिन्न अक्षरो की ध्वनियो से ही, भगवान् शिव ने अनुसन्धानपूर्ण विधियो द्वारा जनता के हित निमित्त रचे थे। मन्त्रो पर पूर्ण अनुसन्धान का अधिकार भगवान् शिव को ही था, इसीलिए तो मन्त्रो को भगवान् शिव कीलित कर देते थे और ससार का वातावरण भी बदल देते थे, जिससे मन्त्रध्वनि जगत् पर विशेष कार्य नही कर पाती थी। जब कोई व्यक्ति मन्त्रो का निष्कीलन विशेष ध्वनिसम्बन्धी मन्त्रबीजो से, या मन्त्र रत्नो के धारण पूर्वक करता था, उस समय वे मन्त्र कार्यशील हो जाते थे। उन पर निष्कीलन क्रिया मे रत्नो का विशेष रूप से महत्व रहता था । क्योकि रत्न भी सात विश्व ज्योतियो की घनीभूत अवस्थाए हैं और कूर्म पुराणानुसार ग्रहो को भी सप्त विश्व ज्योतियो की घनीभूत अवस्था माना है और इन ग्रहो का पोषण भी इन ज्योतियो से ही होता है। इसीलिए जिस समय ग्रहो की दृष्टि मनुष्य पर ठीक नही पडती, उस समय उस ग्रह की पुष्टि करने वाले रत्नो को धारण किया जाता है। क्योकि भिन्न भिन्न रत्नो मे भिन्न २ रग की विश्व

किरणे सचित हैं जैसे—नीलम मे बैगनी रग, हीरे मे नीला, श्वेत पुखराज मे आसमानी, पन्ना मे हरा, प्रवाल मे पीला, मोती मे नारगी, माणिक्य मे लाल। इसी प्रकार इन्द्र धनुष मे भी ये सात रग ही पाये जाते है।

रत्न प्रिया शिवा शक्ति से ही भगवान् शिव सदा कार्यशील बने रहते हैं, अन्यथा वे शिव शब्द मे इकार की शक्ति के बिना शव (मुर्दा) कहलाने लग जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् शिव कल्याण करने के निमित्त ही इकार-स्वरूपा (सृष्टि करने वाली) शक्ति के सयोग से युक्त रहते है। इसी लिए वे मन्त्रो मे शक्तिबीजो की ध्वनिया लगाकर उन्हे निष्कीलित कर लेते थे। जिसका प्रमाण इस इस प्रकार है —

शिव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कु चिकास्तोत्रमुत्तमम्।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजाप शुभो भवेत् ॥१॥

न कवच नार्गलास्तोत्र कीलक न रहस्यकम् ॥
न सूक्त नापि ध्यान च न न्यासो न च वार्चनम् ॥२॥

कु चिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफल लभेत।
अति गुह्यतर देवि देवानामपि दुर्लभम्। ३॥

गोपनीय प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति।
मारण मोहन वश्य स्तम्भनोच्चाटनादिकम्।
पाठमात्रेण ससिद्धयेत् कु चिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥४॥

अथ मन्त्र

ओम् ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥ ओम् ग्लौं हू क्लीं जू स ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डाये विच्चे ज्वल ह स ल क्ष फट् स्वाहा॥ यहा पर मन्त्र बीजो की ध्वनियो को सन्तुलित करने के नाते ही ओम् ऐं ह्रीं

इस नवाव मन्त्र से ग्लौ ह्रू क्ली इस प्रकार अवस्थानुसार ध्वनिये जोड दी है, क्योकि उनकी उत्पत्ति भी आद्याशक्ति भगवती द्वारा ही हुई है। भगवती के आदेशानुसार ही जनता के कल्याण निमित्त बहुत से उपाय बतलाये जाते रहते हैं। इन उपायों का निर्देश शिव करते हैं। इसी लिए देवो मे इनका नाम शिव, अर्थात् कल्याणस्वरूप रखा गया है।

आयुर्वेद शास्त्र एव मन्त्र शास्त्र का विशेष अध्ययन करने से सिद्ध होता है कि भगवती शिवा, पार्वती के रूप मे भगवान् शिव को जनता के हित निमित्त विशेष प्रकार की औषधियो एव मन्त्रो के वर्णन आदि के विषय मे सक्रिय बनाकर अपनी शक्ति द्वारा उनसे ससार कल्याण के उपायो को प्रश्नोत्तर द्वारा प्रकट करवाती है। इस विषय मे नाना-प्रकार के प्रमाण शास्त्रो मे मिलते है। ससार के कल्याण निमित्त मृत्युञ्जय का जाप भी तो शिव को लक्ष्य रखकर ही किया जाता है। शिव भगवान् स्वय सहार के देवता हैं, इनके प्रसन्न होने पर मृत्यु और रोगादि दूर भाग जाते हैं।

जिस समय शिव भगवान् रुष्ट हो कर रुद्र रूप धारण करते हैं और उस रूप मे सृष्टि का कल्याणकारी रूप इकार न होने के कारण जनता के हित निमित्त व्याकरण शास्त्र के "अ ई उण्" आदि १४ सूत्रो का प्रादुर्भाव हुआ, क्योकि व्याकरण मे अक्षर ज्ञान से भी ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस लिए (तो) भगवान् शिव शिवाशक्ति के सहयोग से ब्रह्म ज्ञानी बनने मे समर्थ हैं।

ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति मे शरीर का स्वस्थ रहना अत्यन्त उपयोगी है, इस लिए भगवान् शिव ने जनता की सासारिक यात्रा को सफल बनाने के लिए उसके हितार्थ नाना प्रकार के मन्त्र औषधिए, रस (पारद) रत्न आदि पर विशेष अनुसधान करके आयुर्वेद क्षेत्र द्वारा सिद्ध-वैद्य बनाकर जनता को मोक्ष-पद प्राप्त करवाया। आरोग्य प्रदान करने मे शिव भगवान् का विशेष हाथ रहता है, इसलिये जो व्यक्ति शिव एव शक्ति के निर्देशानुसार जनता के हित निमित्त उनके रोग दूर करने मे प्रवृत्त होता है, उसे भी पुरुषार्थ चतुष्ट्य-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इस लिए आयुर्वेदज्ञो को शिवोक्त रस रत्न, आदि की चिकित्सा का आश्रय लेकर जनता का उपकार करना चाहिये।

मन्त्र चिकित्सा और रत्न चिकित्सा से मनुष्य का स्नायु मण्डल सूक्ष्म एव अव्यक्त क्रियाओ द्वारा प्रभावित होता है । अत दोनो मे एकता है, इन दोनो प्रकार के चिकित्सा क्रमो मे मनुष्य को भगवान् शिव की भान्ति शिव भावना से युक्त रहना चाहिये, तब सफलता आवश्यक है। इस विषय मे जो भिन्न भिन्न रोगो की चिकित्सा निमित्त रत्नो के प्रयोग एव धारण आदि द्वारा जो सफलता के प्रमाण प्राप्त हुए, उनका सकलन इस प्रकार है—

मन्त्रो की सहायता से हीरे का निम्न रोगो पर विशेष प्रभाव धारण एव भस्म के प्रयोग द्वारा देखा गया है —

	रोग नाम —	सफलता प्रतिशत
1	आमातिसार (Amoebic dysentery)	90%
2	अन्धता (Blindness)	60 ,,
3	गुप्त ववासीर (Blind Piles)	90 ,,
4	वायु नलिका प्रदाह (Bronchitis)	90 ,,
5	मोतिया बिन्दु (Catract)	50 ,,
6	आक्षेप (Convulsions)	95 ,,
7	पक्षाघात (Paralysis)	
8	वहरापन (Deafness)	60 ,,
9	भ्रम (Delusions)	90 ,,
10	कष्टार्तव (Menstruation with pain)	70 ,,
11	मुख का पक्षाघात (Facial Paralysis)	80 ,,
12	भगन्दर (Fistula)	60 ,,
13	भ्रम दृष्टि (Hollucinations)	90 ,,
14	योषापस्मार (Hysteria)	85 ,,
15	वच्चो का आक्षेप (Convulsion in Children)	90 ,,
16	चक्षु प्रदाह (Conjunctivitis)	70 ,,
17	उन्माद (Insanity)	80 ,,
18	अनिद्रा (Insomnia)	80 ,,
19	प्रदर (Leucorrhoea)	50 ,,

20	नक्सीर (Nose-Bleeding)	90%
21	श्लैष्मिक ज्वर (Fever due to kapha)	80 ,,
22	फुफ्फुस प्रदाह (Pneumonia)	70 ,,

मन्त्रो की सहायता से माणिक्य के धारण एव सेवन से निम्नरोगो पर विशेष प्रभाव देखा गया है -

1	पाण्डु (Anaemia)	80 ,,
2	सधिवात (Arithritis)	70 ,,
3	रक्तवहन की असम्पूर्णता (Deficiency of Blood Circulation)	60 ,,
4	क्षयरोग (Tuberculosis)	80 ,,
5	दुर्बलता (Debility)	90 ,,
6	आन्त्रवृद्धि (Hernia)	30 ,,
7	वच्चो का पक्षाघात (Hemiplagia in Children)	82 ,,
8	उदासीनता (Malancholia)	90 ,,
9	पक्षाघात (Paralysis)	80 ,,
10	सुषुम्नाप्रदाह (Poliomyelitis)	60 ,,

मन्त्रो की सहायता से श्वेत पुखराज का धारण एव सेवन करने से निम्न रोगो पर विशेष प्रभाव देखा गया है -

1	जल सन्त्रास (Hydrophobia)	80 ,,
2	पित्त ज्वर	80 ,,
3	पित्त प्रकोप	80 ,,
4	रक्त स्राव (Bleeding)	90 ,,
5	रक्त चाप (Blood-Pressure)	70 ,,
6	मस्तिष्क कला प्रदाह (Meningitis)	70 ,,
7	गाठ युक्त प्लेग (Bulbonic Plague)	50 ,,
8	स्वर भग (Hoarsness)	68 ,,
9	खुजली (Itching)	80 ,,
10	कामला (Jaundice)	72 ,,
11	कण्ठनली प्रदाह (Bronchitis)	50 ,,
12	आक्षेप (Convulsions)	70 ,,

13 सान्निपातिक ज्वर (Typhoid Fever) 80%

मन्त्रो की सहायता से 'पन्ना' का धारण एव सेवन द्वारा निम्न रोगो पर विशेष प्रभाव देखा गया है –

1	दमा [Asthma]	85 ,,
2	विसर्प [Erysipelas]	80 ,,
3	अम्ल पित्त [Hyperacidity]	70 ,,
4	धारणा शक्ति ह्रास [Loss of Retentivity]	90 ,,
5	उपदश [Syphilis]	50 ,,
6	शीतपित्त [Urticaria]	80 ,,
7	सिर चकराना [Vertigo]	80 ,,

मन्त्रो की सहायता से 'नीलम' के धारण एव सेवन द्वारा निम्न रोगो पर विशेष प्रभाव देखा गया है -

1	वैसिलरी रक्तातिसार [Bacillary Dysentery]	65 ,,
2	गज [Baldness)	75 ,,
3	मूत्राशय की कमजोरी(Weakness of Urinary Bladder]	70 ,,
4	मस्तिष्क की झिल्ली का प्रदाह (Meningitis)	70 ,,
5	रूसी (Dandruff)	80 ,,
6	मृगी (Epilepsy)	70 ,,
7	गठिया (Gout)	70 ,,
8	स्नायु प्रदाह (Neuritis)	70 ,,
9	स्नायविक सिर दर्द (Neuralgic Headache)	82 ,,
10	सधिवात (Rheumatism)	80 ,,
11	गृध्रसी (Sciatica)	82 ,,
12	शीताद (Scurvy)	75 ,,

मन्त्रो की सहायता से 'प्रवाल' के धारण एव सेवन द्वारा निम्न रोगो पर विशेष प्रभाव देखा गया —

1	मधुमेह (Diabetes)	60 ,,
2	मन्दाग्नि (Dyspepsia)	80 ,,

3.	परिणामशूल	70%
4.	अम्लपित्त (Hyperacidity)	82 ,,
5	अजीर्ण (Dyspepsia)	75 ,,
6	त्वचारोग (Skin Diseases)	75 ,,

मन्त्रो की सहायता से 'मोती' के धारण एव सेवन द्वारा निम्न रोगो पर विशेष प्रभाव देखा गया —

1	मूत्र ग्रथि का प्रदाह	75 ,,
2,	मानसिक दुर्बलता	85 ,,
3	क्षयरोग	80 ,,

आयुर्वेद एव ज्योतिष् के आधार पर रत्नो के धारण का क्रम

अनादिकाल से मनुष्य रत्नो को अपने काम मे लाते आये हैं। बहुधा रत्नो का व्यवहार धन की वृद्धि करने, दीर्घायु पाने, शक्ति और लोकप्रियता बढाने, और रोग, विपत्ति से बचने के लिये होता है। प्राचीन भारत मे नृपति-वर्ग आकस्मिक दैव विपत्ति से बचने के लिये अच्छे से अच्छे रत्नो को धारण करते थे। फलित ज्योतिष् मे कुग्रहो के प्रभाव को दूर करने के लिये भिन्न भिन्न रत्नो के धारण की विधि दी गई है। वराहमिहिर के समय (आनुमानिक ४०० ईशवी) से ही ज्योतिष् के प्राचीन ग्रन्थो मे रत्नो का और उनके प्रभाव का उल्लेख है। सबसे प्राचीन पुराण विष्णु पुराण, मे रत्नो की उत्पत्ति और उनकी शक्ति का बहुत व्यापक वर्णन है। आजकल भी कुछ लोग धन की वृद्धि के लिए, और रोगपीडित मनुष्य कष्ट से छुटकारा पाने के लिए, रत्नो को धारण करते है।

धारण के अतिरिक्त रत्न विषयक एक और भी दृष्टिकोण है जिसे कम महत्त्वपूर्ण समझना ठीक न होगा। कई रत्न तो औषधि की तरह उपयोग मे लाए जा सकते है, और भारत के आयुर्वदीय ग्रन्थो मे औषधि के रूप मे रत्नो के व्यवहार की विधि दी गई हैं। रत्नो की भस्म बनाने की बहुत कठिन विधिय हैं। इन रत्न भस्मो का साधारण और कठिन रोगो मे उपयोग होता है।

राहु, केतु, उपग्रहो को छोडकर अन्य सात ग्रहो की तरह उनके पवित्र रत्न भी सात ज्योतिओ के घनीभूत रूप है। इनको मनुष्य के कल्याण और रोगमुक्ति के लिए व्यवहार करने के कई कारण है। पहले तो रत्नो मे शुद्ध एक ही मात्र रग प्रचुरता मे उपलब्ध है और इनमे मिश्र रग नही मिलता जैसा कि अन्य वस्तुओ मे सर्वत्र पाया

जाता है। दूसरे—इन रत्नो मे बहुत ही तेज चमक रहती है जिससे इनके भीतर की परिपूर्ण ज्योति प्रकाशित होती है। तीसरे—ये रत्न एलकोहल, शोषित स्पिरिट या जल मे बडी आसानी से अपनी ज्योति का विक्षेप कर देते हैं लेकिन इस विक्षेपण के द्वारा इनकी ज्योति का ह्रास नही होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रत्न विश्वज्योति का अक्षय और चिरस्थायी भडार है।

रत्न प्रत्यक्ष वस्तु है। यह किरण और दीप्ति के घनीभूत रूप के और कुछ नही है। जिन सात प्रधान रगो से ज्योतिष्मान् भगवान् का अग बना हुआ है जैसा कि इन्द्रधनुष मे देखा जाता है येही सात रग पृथक्तया सात प्रधान रत्नो मे घनीभूत हैं। अत ये रत्न विश्वज्योतिओ के अक्षय आधार हैं। जब तक ये सम्पूर्ण नष्ट या भस्म नही हो जाते हैं तब तक विश्व किरणो का प्रसारण बद नही करते है, चाहे उनको किसी भी स्थान मे रखा जाय या तावीज और अगूठी मे जडा जाय या किसी स्थित्यात्मक या गत्यामक रूप मे औषधि की तरह व्यवहार किया जाय।

अत. रत्न विश्वज्योतिओ के अक्षय भडार है। इन्द्रधनुष मे सात रग होते हैं। आधुनिक विज्ञान मे इन सात रगो का नाम है 'बेनीआह-पिनाला' (Vibgyor) यह शब्द बैगनी, (Violet), नीला (Indigo), आसमानी, (Blue), हरा (Green), पीला (Yellow), नारगी (Orange), और लाल (Red), इन सात रगो के आद्य अक्षरो को लेकर बना हुआ है सब विश्वरग रत्नो मे घनीभूत हैं। इन सचित विश्वकिरणो का दवा की तरह उपयोग किया जा सकता है, उससे मनुष्य-समाज को बहुत उपकार पहुच सकता है।

नीलम मे बैंगनी रग सचित है, हीरे मे नीला रग, श्वेत-पुखराज मे आसमानी पन्ना मे हरा, प्रवाल मे पीला, मोती मे नारगी और माणिक्य मे लाल विश्व किरण।

सारे रत्न एव मणिया जिनमे कई रगहीन, बहुत से रगीन खनिज रत्न हैं और जो पृथ्वी के गर्भ मे पाये जाते है। प्राचीन काल मे लोगो द्वारा, बहुमूल्य माने जाते रहे हैं। इनमे खनिजो के अतिरिक्त कुछ

जैविक रत्न भी हैं जिनमे मू गा, मोती तथा तृण मणि उल्लेखनीय हैं। इन रत्नो को अमूल्य समझे जाने का कारण उनकी दुर्लभता के अतिरिक्त उनके अन्य गुण है जिनका ज्ञान उस समय के हमारे पूर्वज प्राप्त कर चुके थे। यह मालूम किया गया कि प्रत्येक मणि या रत्न उस व्यक्ति पर, जो उसे पहनता है, विशेष कर उसे अपनी त्वचा के सम्पर्क मे रखता है, कुछ रहस्यमय प्रभाव डालता है। ज्यो-ज्यो ज्योतिर्विज्ञान का विकास होता गया त्यो-त्यो यह भी मालूम हुआ कि एक रत्न विशेष का सारे व्यक्तियो पर एक सा प्रभाव नही होता। पर वह प्रभाव व्यक्ति विशेष के जन्म–ग्रह के गुणो के अनुरूप होता है,

आजकल रत्नो तथा उपरत्नो का वर्गीकरण उनके मूल्य के अनुसार किया जाता है। उपरत्न रत्नो की अपेक्षा अधिक परिमाण मे मिलते हैं। रत्नो तथा उपरत्नो की चमक-दमक उनके काट तथा प्रमार्जन पर निर्भर है। ज्वलत रत्नो मे हीरे, नीलम पन्ने एव माणिक्य का सर्वोपरि स्थान है। वैदूर्य, गोमेद, पुखराज तथा अन्य रत्नो मे आब नही होती पर काटे जाने पर वे भी काफी चमकीले बन जाते हैं। निष्प्रभ रत्नो मे काश्मीर का नीलम चीन की हरित मणि तथा एले-क्जेड्राइट है। प्राच्य देशो मे चद्रकात मणि का सम्मान है तो पाश्चात्य देशो मे धार्मिक लोग नीलराग मणि तथा माणिक्य को पसन्द करते है।

नीलराग मणि तथा माणिक्य पवित्रता और नीलम बुद्धि के प्रदायक रत्न है। फीरोजा रोग नाशक तथा स्वास्थ्यदाता है। हरित मणि विद्वत्ता की जननी है। चीन के लोग वस्तुत नव जात शिशु की जीभ पर हरितमणि का टुकडा रखते हैं जिससे वह बडा होने पर बुद्धिमत्तायुक्त वाणी का उच्चारण कर सके। वे इसे मृत पुरुष की जीभ पर भी रखते हैं जिससे उसे शाश्वत शाति लाभ हो।

भिन्न भिन्न ग्रहो एव मासो मे उत्पन्न व्यक्तियो के लिये रत्नधारण क्रम इस प्रकार है —

जनवरी में पैदा हुए व्यक्ति का जन्म दिवस रत्न वैक्रात है। जिसकी जन्म कुण्डली मे सूर्य कु भ राशि मे स्थित हो उसको वैक्रात रत्न धारण

करना चाहिये। ऐसे लोगो का जन्म २० जनवरी से १९ फरवरी के बीच मे होना है, इस रत्न को धारण करने से किसी भी काम मे विशेषत परीक्षा मे सफलता मिलती है। यह धारण करने वाले व्यक्ति को उस समय भी सतोष प्रदान करता है जब अवस्था उसके विपरीत हो। वैक्रात द्रव्य की अपेक्षा मानसिक सफलता प्रदान करता है। मानसिक विकास मे धनोपार्जन सरल होता है। वैक्रात प्रेम का प्रतीक माना गया है। इसे शादी के अवसर पर पति-पत्नी को भेट करता है। इस मास का उपरत्न शेष मणि है।

फरवरी मे जन्म लेने वाले व्यक्ति के जन्म दिवस का रत्न नीलराग मणि तथा ऐक्वामेरीन है। यात्रा के समय ऐक्वामेरीन रत्नो को धारण करना शुभ है। इसको पहनने वाले व्यक्ति को ये रत्न मदिरापान से बचाते हैं और उसे किसी भी क्षेत्र मे कठिन काम करने वाला बनाते हैं। ये कवि एव लेखक को प्रसिद्धि प्रदान करते हैं तथा वकील लोगो को मुकदमा जीतने मे सहायता करते हैं। नीलराग नीलराज मणि राज्यत्व का सूचक है। इसको धारण करने से साहित्य के क्षेत्र मे सफलता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त घुडदौड तथा जूए जैसे खेलो मे व्यक्ति का प्रयास सफल होता है। यह रत्न मीन राशि का रत्न है। इसे २० फरवरी से २० मार्च तक के जन्म दिवस वाले व्यक्तियो को पहनना शुभ होता है। इस मास का उपरत्न कपिश रत्न है।

मार्च के महीने मे जन्म लेने वाले व्यक्तियो का रत्न कपिश मणि है जिसे रक्तप्रस्तर भी कहा जाता है। यह हरे रग का रत्न है जिसमे लाल धब्बे होते हैं। इसको धारण करने वाले व्यक्ति को आमयात्रिकी मे कृषि तथा उद्योग क्षेत्र मे सफलता मिलती है। इसे २१ मार्च से १९ अप्रैल तक के जन्म दिवस वाले व्यक्ति पहनते है। इस मास का उपरत्न माणिक्य है।

अप्रैल का जन्म दिवस रत्न हीरा है। हीरे को धारण करने वाले व्यक्ति के लिये कुछ भी कर लेना कठिन नही होता। हीरा उन्हे यश प्रदान करता है। मानसिक कामो के अतिरिक्त दूसरे कामो मे भी यह रत्न सफलता प्रदान करना हैं। हीरा वृषभ राशि के सूर्य का रत्न है। इसे २० अप्रैल से १९ मई तक के जन्म दिवस वाले व्यक्ति धारण करते हैं। इस माम का उपरत्न पुखराज है।

मई के महीने मे पैदा होने वाले व्यक्तियो के जन्म दिवस के रत्न सुलेमानी पत्थर एवं पन्ना है। सुलेमानी पत्थर धारण करने वालो को कला एवं संगीत में प्रवीण बनाना है। पन्ना सारे नुकसानो से बचाता है। इससे धन की प्राप्ति होती है और उसका वैवाहिक जीवन सुखी बनाता है। इसे धारण करने वाले को शक्तिमान् एवं यशस्वी बनाता है। इसे २० मई से २० जून तक के जन्म दिवस वाले व्यक्तियो को पहनना चाहिये। इस मास का उपरत्न लाल वैक्रात है।

जून के महीने मे जन्म लेने वाले व्यक्तियो का जन्म दिवस रत्न विद्रुम (मूगा) है। विद्रुम व्यवसायी लोगो के लिए अच्छा है। उन्हें व्यापार में सफलता तथा द्रव्य मिलता है। इस मास का उपरत्न पन्ना है। कई लोग जून महीने का रत्न सुलेमानी पत्थर को भी मानते हैं। विद्रुम उन लोगो को पहनना चाहिये जिनका जन्म दिवस २१ जून तथा २० जुलाई के बीच मे पडता है। विद्रुम (मूगा) कर्क राशि का रत्न माना गया है।

जुलाई मास का जन्म दिवस रत्न लाल या माणिक्य है। यह सिंह राशि का रत्न है। माणिक्य शाति तथा सम्मान प्रदान करता है। इससे सब कामो मे धन-प्रप्ति होती है। इसे वे लोग पहनते हैं जिनका जन्म दिवस २१ जुलाई तथा २१ अगस्त के बीच मे आता है। इस मास का उपरत्न नीलम हैं।

अगस्त मास का जन्म दिवस रत्न सार्डोनिक्स है। कार्नेलियन, स्वर्ण पत्थर तथा पेरिडोट भी जिसे गुलाबी पुखराज कहा जाता है, अच्छे सिद्ध हुए हैं। सार्डोनिक्स रत्न रग तथा आकृति मे विद्रुम के समान है। इसके धारण करने वाले को वक्तृत्व कला मे निपुणता प्राप्त होती है, द्रव्य-लाभ तथा सफलता के सर्वत्र दर्शन होते है। कन्या राशि वाले व्यक्तियो का यह रत्न है। ऐसे लोगो का जन्म २२ अगस्त से २२ सितंबर के बीच में होता है। इस मास का उपरत्न हीरा है।

सितबर महीने मे जन्म धारण करने वाले व्यक्तियो का जन्म-दिवस रत्न नीलम है। यह तुलाराशि के सूर्य का रत्न समझा जाता है।

इसे वे व्यक्ति पहननते हैं जिनका जन्म दिन २३ सितबर तथा २२ अक्टूबर मे बीच मे किसी दिन होता है। नीलम को धारण करने वाले व्यक्ति को वह रत्न उच्चता तथा सम्मान प्रदान करता है। प्राचीन काल के लोगो का यह विश्वास था कि नीलम से सारी बुराइया दूर रहती है। इस मास का उपरत्न गोमेद है।

अक्तूबर मास का जन्म दिवस रत्न रत्नोपल मणि है। यह वृश्चिक राशि के सूर्य का रत्न माना गया है। इसे वे लोग धारण करते हैं जिनका जन्म २३ अक्टूबर एव २२ नवम्बर के बीच मे हुआ है यह धारण करने वाले व्यक्ति को बुरे प्रभाव से बचाता है, स्नेह उत्पन्न करता है तथा वैवाहिक जीवन को सुखी बनाता है। इस मास का उपरत्न सुलेमानी पत्थर है।

नवम्बर महीने का जन्म दिवस रत्न पुखराज माना गया हैं। यह धनराशि के सूर्य का रत्न है। यह मस्तिष्क को स्वस्थ बनाता हैं। इसे धारण करने वाले व्यक्तियो की कार्यक्षमता अच्छी होती है। इसे उन्हें पहनना चाहिये जिनका जन्म दिवस २३ नवम्बर तथा २० दिसम्बर के बीच मे पडता है। इस मास का उपरत्न नीलराग मणि है।

दिसवर मास मे पैदा होने वाले व्यक्तियो का जन्म दिवस रत्न फीरोजा है। यह मकर राशि के सूर्य का रत्न माना गया है। इसे उन्हें पहनना चाहिये जिनका जन्म २१ दिसबर तथा १६ जनवरी के बीच मे पडता हो। इसको पहनने से स्वास्थ्य ठीक बना रहता है। यह लगभग सभी कामो मे सफलता प्रदान करता है। इस मास का उपरत्न वैदूर्य है। गोमेद भी अच्छा माना गया है।

नव रत्नो की चौकी को इस प्रकार जडवाया जाता है

पन्ना	हीरा	मुक्ता
पुष्पराग	माणिक्य	विद्रुम
लहसुनिया	नीलम	गोमेद

ये सब रत्न बिना किसी दोष के होने चाहिएं। यदि सब रत्न इस प्रकार के न मिल सके तो माणिक्य तो दोष रहित अवश्य होना चाहिये।

भिन्न भिन्न ग्रहो के रत्न -

१ सूर्य का पद्मराग अर्थात् माणिक्य या लाल मणि
२ चद्रमा का रत्न मुक्ता या मोती
३ भौम का रत्न विद्रुम या'मू गा
४ वुध का रत्न पन्ना
५ गुरु का रत्न पुष्पराग या पुखराज
६ भृगु का रत्न हीरा
७ शनि का रत्न-इद्रनील मणि अर्थात् नीलम
८ राहु का रत्न-गोमेद
९ केतु का रत्न-लहसुनिया

इस के अतिरिक्त उपर्युक्त रत्नो की भस्मो का प्रयोग आयुर्वेद शास्त्र मे वहुधा जटिल रोगो की निवृत्ति के लिए किया जाता है। उन के असाध्य, कष्ट साध्य रोगो मे विशेष सफलता शीघ्रता से होती है।

इसी लिए रत्नो के महत्व के प्रमाण मिलते है, जो कि इस प्रकार है –

रत्नानि भक्षितानि स्युर्मधुराणि सराणिच
चक्षुष्यानि व शीतानि विषघ्नानि धृतानिच
मागल्याणि मनोज्ञानि ग्रहदोष हराणिच।